माँ की चिंतन लहरें

(संस्मरण)

प्रस्तुतकर्त्री

आर्यिका श्री पवित्रमती जी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

कृति	:	माँ की चिंतन लहरें (संस्मरण)
प्रस्तुतकर्त्री	:	आर्यिका श्री पवित्रमती जी
संस्करण	:	द्वितीय, फरवरी 2012
आवृत्ति	:	2200 प्रतियाँ
मूल्य	:	10/-
प्राप्ति स्थान	:	धर्मोदय साहित्य प्रकाशन बाहुबली कॉलोनी सागर (म. प्र.) मो. 094249-51771
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल

कृति के संदर्भ में .....

''गुरु की महिमा वरणी न जाये गुरु नाम जपो मन-वचन-काय।।''

गुरु के उपकारों को जन्म-जन्म तक नहीं भूला सकते हैं। जब हम लोग गुरु माँ के साथ दक्षिण यात्रा पर निकले थे तो एलोरा में पूज्या गुरुमती माता जी एवं दृढ़मती माता जी सहित 47 आर्यिकाएँ विराजमान थीं। उनमें पूज्या दृढ़मति माता जी की संघस्थ आर्यिका आदरणीय सत्यार्थमति माता जी एक दिन पूज्या आर्यिका श्री के पास आयीं, उनके हाथ में पेन-कॉपी को देखकर मैंने पूछ लिया कि माता जी आप क्या लिख रही हैं ? वो कहने लगीं, कुछ नहीं, जब मैंने दो-तीन बार उनसे विशेष आग्रह के साथ पूछा तो बोलीं विशेष कुछ नहीं लिख रही हूँ, लेकिन जब कभी हमारी बड़ी माता जी से संबंधित कोई विशेष चर्चा या संदर्भ सामने आते हैं तो उसे मैं अपनी कॉपी में नोट कर लेती हूँ जो मुझे जीवन में बहुत उपयोगी होने के साथ-साथ मार्गदर्शक भी बनते हैं, माता जी मेरा लिखा हुआ कोई पढ़े या न पढ़े लेकिन मेरा लिखा हुआ मेरे जीवन को गन्तव्य तक पहुँचाने में साधक बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। उन्होंने ही मुझसे कहा कि माता जी कुछ आप भी लिखा करो, आपकी बड़ी माता जी तो इस पंचमकाल में भी चतुर्थकालीन सतियों जैसी जीवन जीने वाली हैं, इनके महोन्नत आदर्श सभी को संबल देने वाले हैं, आप तो ऐसी महान् योगिनी, तपस्वनी, मूलाचारवत् चर्या, समयसारवत् चिंतन करने वाली आर्यिका श्री की शिष्या हैं।

उस समय तो मुझे लगा कि सागर सी गंभीर, पृथ्वी सी धीर पूज्य आर्यिका श्री के बारे में क्या मैं लिख पाऊँगी ? क्या मुझमें इतनी क्षमता है ? नहीं मैं.....। तभी मुझे आर्यिका सत्यार्थमति माता

जी की भावनाओं ने प्रेरित किया और मेरे अंतस्तल ने मुझसे कहा या मेरी श्रद्धा ही बोली कि प्रयास करो और मैंने अंदर की सुषुप्त चेतना को जागृत करने का पुरुषार्थ किया जैसा बना वैसा ही यहाँ लिखा है।

वैसे पूज्या आर्यिका श्री के बारे में कुछ लिखने का प्रयास करना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है या कहो कि लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से महल बनाना ही चाह रही हूँ। मैं देखती हूँ कि जब भी कोई श्रावक अपनी समस्या लेकर सामने आता है तो पूज्या माँ श्री उसकी समस्या को इतनी सहजता और सरलता से सुलझा देती हैं कि सामने वाला संतुष्ट हो जाता है और धर्म का सही स्वरूप समझकर धर्ममार्ग का अनुशरण करने लगता है।

ऐसे ही धर्म व आगम को बताने वाली कुछ चर्चाओं को मैंने लिखने का प्रयास किया और लिखकर जब संघस्थ आर्यिकाओं व ब्रह्मचारिणी बहिनों को सुनाया तो सभी को बहुत अच्छा लगा और सभी ने मुझे आगे लिखने को प्रोत्साहित भी किया और इतना ही नहीं हमारी अग्रजा आर्यिका आदित्यमति माता जी ने यहाँ तक प्रोत्साहित किया कि पवित्रमति माता जी तुम पू. आर्यिका श्री के बारे में ऐसा और भी लिखो फिर मैं इन संस्मरणों को एक दिन जरूर जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करूँगी ताकि पू. आर्यिका श्री के व्यक्तित्व से हम तुम ही नहीं दुनिया के सारे लोग लाभ ले सकें, इसी भावना के साथ मैंने पूज्या माता जी के बारे में लिखना प्रारम्भ किया लेकिन मेरे में इतना क्षयोपशम नहीं कि मैं अपनी गुरु माँ के असीम गुणों का गुणगान सीमित शब्दों में कर सकती, फिर भी भक्ति के वशीभूत होकर कुछ गुणों को कोयल की भांति जो बसंत ऋतु में आम की मंजरी का निमित्त पाकर कूकती है। मैं भी अल्प बुद्धि होकर गुरु माँ

के व्यक्तित्व के बारे में कूहू कूहू कर रही हूँ, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा अंधकार को नष्ट करता हुआ प्रतिदिन अपनी कलाओं के समूह के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार गुरु माँ के उपकारों एवं संस्कारों को लिखकर मेरा जीवन भी वृद्धिंगत हो, इसी भावना से मैंने इन संस्मरणों को संजोने का पुरुषार्थ किया। इनके माध्यम से हम जीवन में बहुत कुछ पा सकते हैं इनको लिखते समय मुझे ऐसा लगता था कि कैसी भी परिस्थिति हमारे सामने आये तो हम इन संदर्भों को पढ़कर समाधान करलें, मैंने इन संदर्भों को प्रत्यक्ष रूप से देखा है, कितनी-कितनी विषम परिस्थितियों में गुरु माँ ने अध्यात्म को नहीं छोड़ा और समता पूर्वक सहन किया, गुरु माँ की सहन-शीलता, सहजता शब्दों के माध्यम से लिख पाना जब इतना कठिन है तो उसे जीवन में उतारना कितना कठिन होगा ? मैं सोचती हूँ कि ऐसे महान् व्यक्तित्व के चरणों में रहकर सभी अपनी आत्मा का कल्याण करें, दुखों से छुटकारा पायें।

मेरा न तो साहित्य में ही प्रवेश है, न मेरी हिन्दी शुद्ध है, मैंने तो अपनी टूटी-फूटी, बोल-चाल की भाषा में लिखा था। लेकिन हमारी अग्रजा आदित्यमति माता जी ने इन संस्मरणों को साफ-सुथरी भाषा में लिखकर मुझे उन्नति का सोपान देकर मंजिल तक पहुँचाने का साहस ही दिया है, मैं उनके उपकार की बहुत ऋणी हूँ, उन्हीं से मुझे संस्मरण रूपी अमूल्य मोतियों को पिरोने में सहयोग मिला, मेरी भावना है कि इन अमूल्य मोतियों को सभी अपने कंठ में सुशोभित करके अपने हृदय की शोभा को बढ़ायें और सुख शांति का अनुभव करें। पूज्या आर्यिका श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन.....

-आर्यिका पवित्रमती

पूज्य 105 आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी

: जीवन-झाँकी

पूर्वनाम	: लीला
पिता	: श्री बालूलाल जी
माता	: श्रीमती कमला जी
जन्मतिथि	: मिति आश्विन शुक्ला पंचमी, सन् 1963
जन्मस्थान	: भीण्डर (उदयपुर-राजस्थान)
लौकिक शिक्षा	: हाईस्कूल
परिणय	: भीण्डर में ही, 18 वर्ष की आयु में, सन् 1981
गृहत्याग	: परिणय के 18 माह बाद
प्रतिमाधारण	: अलोध में 5 प्रतिमा, कुचामन में 9 प्रतिमा के व्रत
आर्यिकादीक्षातिथि	: 2 फरवरी 1985, कूकनवाली (कुचामनसिटी- राज.)
दीक्षागुरु	: परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी मुनिराज
रुचियाँ	: स्वाध्याय, तप-त्याग, चिन्तन-मनन, लेखन
विशिष्टता	: मधुर, गम्भीर पौराणिक शैली में प्रवचन
दीक्षित शिष्याएँ	: आर्यिका वृषभमती, आर्यिका आदित्यमती, आर्यिका पवित्रमती, आर्यिका गरिमामती, आर्यिका सम्भवमती, वरदमती, शरदमती, चरणमती, करणमती, शरणमती।

माँ की चिंतन लहरें

(संस्मरण)

अनुक्रम

1.	कर्त्तापन से कोशों दूर	1
2.	नीरस भी सरस	3
3.	मन को पकड़कर रखो	6
4.	निस्पृहता	8
5.	धर्मध्यान क्या है ?	10
6.	कर्मबंध ही ना हो	12
7.	बाहर मत उलझो	14
8.	साधना क्या है ?	16
9.	असीम आत्मविश्वास	18
10.	मैं कौन हूँ ?	21
11.	मन को मत घुमाना	23
12.	बाहर मत, अंदर का पढ़ो	25
13.	शरीर नहीं, आत्मा को देखो	26
14.	सबसे बड़ा पाप	28

15.	जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि	30
16.	अपूर्व सौम्यता	35
17.	जो कह दिया सो करना है	36
18.	पापोदय में समता ही निर्जरा का कारण	38
19.	अदम्य साहस	40
20.	''लक्ष्य याद रखो ''	42
21.	समय को पहिचानो	45
22.	निवृत्ति ही साधना का सोपान	49
23.	आकृति बदली तो कर्म बदले	51
24.	कलश करो या न करो, क्लेश मत करो	52
25.	अनूठी मनौती	53
26.	तप-त्याग के प्रति बहुमान	55
27.	आत्मिक दृष्टि	56
28.	साधना का फल	57
29.	पैर नहीं, कषायों को दबाओ	59
30.	जो आया है वो जायेगा	60
31.	मूल्यवान क्या ? ज्ञान या आचरण	62

❑❑❑

1. कर्त्तापन से कोशों दूर

बात कुण्डलपुर के बड़े बाबा के महामस्तकाभिषेक महोत्सव की है जब 250 पिच्छीधारियों के सान्निध्य में पञ्चकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो रहे थे, उस समय क्षेत्र पर पूरे भारतवर्ष के श्रावक आकर अपने-अपने भाग्य को श्रेष्ठ बनाने हेतु आहारदान देने की भावना रखकर कुण्डलपुर आये थे।

दो-ढाई सौ चौके लग रहे थे, सभी चौके वाले सोचते थे कि आज हमारे यहाँ आचार्य महाराज का पड़गाहन हो जाये तो हमारा भाग्य खुल जाये। हमारी श्रावक पर्याय धन्य हो जाये। लेकिन इतनी भीड़ में आचार्य महाराज तो एक ही हैं। कहाँ-कहाँ जायेंगे ? जिसका पुण्य प्रबल है, वहाँ चले जाते, उसके यहाँ आहार हो जाता और वह अपने भाग्य को सराहता हुआ अपने जीवन को संयम से भी सजाने का पुरुषार्थ करता है। गुना के एक श्रावक, जो लगभग एक महीने से पड़गाहन कर रहे थे लेकिन आचार्य महाराज का पड़गाहन नहीं हो पा रहा था उनको मन में बहुत विकल्प हो रहा था, वे अपना विकल्प लेकर पूज्य आर्यिका श्री के पास आये और कहने लगे पूज्यनीय माताजी आप आशीर्वाद दे दो तो निश्चित ही मेरे यहाँ आहार हो जायें। थोड़ी देर तक तो पू. आर्यिकाश्री सुनती रहीं फिर बोली जब तुम पड़गाहन करने खड़े होओ उस समय णमोकार मंत्र पढ़कर खड़े होना तुम्हारे यहाँ आचार्यश्री जी का आहार हो जायेगा। उनको पू. आर्यिकाश्री के ऊपर अगाध आस्था है। उन्होंने कहा ठीक है पूज्य माताजी जैसा आपने कहा है वैसा ही करुँगा। दूसरे दिन वे जब पड़गाहन करने खड़े हुये तब णमोकारमंत्र पढ़ा और उसी समय आचार्य महाराज का पड़गाहन उनके यहाँ हो गया, उनका मन गद्गद् हो रहा था। अब वे आहार के समय भी णमोकारमंत्र पढ़ते रहे जिससे आहार भी निरंतराय हो गया उनको बहुत खुशी हो रही थी। वे आचार्य महाराज को वसतिका तक छोड़कर सबसे पहले पूज्य आर्यिकाश्री के पास आये और रोम-रोम से हर्षित होते हुए बोले- पू. आर्यिकाश्री आपके शुभाशीष से मेरे यहाँ आचार्यश्री का आहार निरंतराय हो गया। मुझे बहुत खुशी हो रही है। पूज्य आर्यिकाश्री बोलीं यह मेरे शुभाशीष का नहीं वरन् णमोकारमंत्र का प्रभाव है। इसके प्रभाव से तो संसार-सागर भी पार हो जाता है,कर्मक्षय हो जाते हैं फिर यह कार्य क्यों नहीं होता। तुम्हारी णमोकारमंत्र पर श्रद्धा थी और गुरु के प्रति बहुमान, उसका फल प्रत्यक्ष ही तुम्हें मिला है।

धन्य है पूज्य आर्यिकाश्री जिनकी णमोकार मंत्र पर अगाढ़ श्रद्धा है और अपने आपको कर्तृत्त्वभाव से कोषों दूर रखती हैं। ऐसी पू. आर्यिकाश्री के चरणों में मैं कोटि-कोटि नमन करती हूँ और भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि हमारे अंदर से भी पूज्य आर्यिकाश्री की भांति कर्तृत्त्व भाव हटे और कर्तव्य की तरफ ही ध्यान रहे।

❑❑❑

2. नीरस भी सरस

संदर्भ श्रीरामपुर (महाराष्ट्र) वर्षायोग का है। पूज्य आर्यिकाश्री की भावना पाँच उपवास करने की थी। वैसे भी उनका 25 बार 5-5 उपवास करने का संकल्प है। इसलिए प्रायः हर वर्षायोग में एक-दो कर ही लेती हैं लेकिन यहाँ स्वास्थ्य कुछ नरम-गरम होने से एक-एक उपवास भी कठिन हो रहा था, फिर अपने आत्मिक बल से एक माह के 10 उपवास कर ही रहीं थीं। अब जब वर्षायोग का अंतिम चरण चल रहा था, पूज्य आर्यिका श्री ने अपना मन बना ही लिया कि यदि 5 उपवास नहीं तो तेला तो कर ही लेती हूँ और तेला का संकल्प भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के चरणों में कर ही लिया। जब तेला हो गया तो सभी श्रावक सोच रहे थे कि आज पूज्य माताजी पारणा करेंगी लेकिन हम सभी आर्यिकाओं को मन में ऐसा लग रहा था कि आर्यिकाश्री शायद ही पारणा करें। सभी के मन में ऊहापोह चल रहे थे जैसे ही पूज्य आर्यिकाश्री चर्या के समय मंदिरजी गयीं तो सभी श्रावकों को विश्वास ही हो गया कि अब तो पारणा करेंगे ही नहीं तो उपवासों में इस समय मंदिर क्यों आते ? सभी खुश थे सोच रहे थे वह कौन सौभाग्यशाली होगा जिसके यहाँ पारणा होगी। किन्तु देखते ही देखते सब विस्मृत उस समय हुये जब पूज्य आर्यिकाश्री चर्या पर नहीं उठीं। सभी एक बार तो उदास हो गये लेकिन फिर भी भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि उनके

उपवास अच्छे से सानन्द सम्पन्न हो जायें। हम सभी आर्यिकाओं, ब्रह्मचारिणी बहिनों को तो पहले से ही लग रहा था और वह सच हो गया। पूज्य आर्यिकाश्री को जहाँ एक उपवास भी कठिन हो रहा था वहीं 5 उपवास ध्यान, साधना अध्ययन के साथ मौन पूर्वक निर्विकल्पता से सम्पन्न हो गये। सभी को पारणा का इंतजार था, पारणा हुई लेकिन पूज्य आर्यिकाश्री ने पारणा में सौंठ, उकाली, केर, केर का पानी, मूंग की दाल का पानी कुछ भी नहीं लिया। नमक, मीठा का तो वैसे भी त्याग है। प्रसन्न मुद्रा के साथ सामान्य रोज जैसे आहार करके आ गयी, जो श्रावक छोड़ने आए थे उन्होंने कहा पूज्य आर्यिकाश्री आपने कुछ भी नहीं लिया न सौंठ, न लौंग-इलायची का घासा, केर आदि.....। सुनकर पूज्य आर्यिकाश्री ने कहा उन मुनिराजों को देखो जो एक-एक, दो-दो माह के उपवास करते थे, पारणा के लिए आये किसी श्रावक को पता भी नहीं रहता था कि इनके इतने-इतने उपवासों की पारणा है जैसा श्रावक ने दिया नीरस हो या सरस खाकर आ जाते थे। आकर पुनः माह-माह के उपवास कर लेते थे। ऐसी साधना होना चाहिए। आहार में अपने व्रतों के अनुकूल जो कुछ भी मिला उसको निर्विकल्प खा लिया। मन में उसके बारे में विचार तक नहीं आता है। रत्नत्रय की साधना के लिए आराधना के लिए इस शरीर में ओंगन डालना पड़ता है। जैसे गाड़ी में ओंगन डालते हैं उसमें क्या रहता है ? बचाखुचा तेल नीचे का जैसा-तैसा वैसे ही इस शरीर को चलाने के लिए आहार रूपी ओंगन देना है। उसमें क्या देखना है कि अच्छा है या बुरा है। नीरस है या सरस, मीठा हो या फीका हो मात्र गड्ढा भरना है। भर

लो क्या है, अनंतकाल खाते-खाते ही निकल गया है कभी तृप्ति नहीं हुयी है। यह चर्चा चल ही रही थी कि एक श्राविका ने कहा पूज्य आर्यिकाश्री आपका चेहरा कितना छोटा लग रहा है। सुनकर आर्यिकाश्री बोले-चेहरा भले ही छोटा हो जाए पर आत्मा छोटा नहीं होना चाहिए। शरीर का तो यह स्वभाव ही है, पुद्गल है। पुद्गल मतलब गलना-मिटना, छोटा होना, मोटा होना। लेकिन आत्मा जो शाश्वत है। न कभी छोटा होता है और न कभी मोटा होता है। पूज्य आर्यिकाश्री ने अपनी बड़ी माताजी (पूज्य आर्यिका श्री विशालमति माताजी)को याद करते हुए बताया कि वो हमेशा कहा करती थीं कि पानी एक ही क्यारी में जायेगा यदि आत्मा की क्यारी में जायेगा तो शरीर रूपी क्यारी सूखेगी और यदि शरीर रूपी क्यारी पुष्ट होगी तो आत्मा रूपी क्यारी सूखेगी। हमेशा ये ध्यान रखना चाहिए कि हमारा लक्ष्य क्या है कौन सी क्यारी को हरी-भरी बनाना है ? हम किस मार्ग पर हैं ? उसी मार्ग को देखकर अपनी मंजिल को प्राप्त करने कि लिए आत्मा रूपी क्यारी में ही पानी देना चाहिए। साधु को तो हमेशा ही ऐसा चिंतन करना चाहिए।

धन्य है पूज्य आर्यिकाश्री जिनके अंदर सदैव आत्म-कल्याण का ही चिंतन चलता रहता है उसी की प्राप्ति का उपाय करती रहती हैं और सभी को उसी मार्ग पर चलने के लिए अग्रसर करती रहती हैं।

❑❑❑

3. मन को पकड़कर रखो

प्रकरण दक्षिण यात्रा के समय कर्नाटक प्रांत का है। कुछ समय का एक स्थान पर प्रवास चल रहा था, साधु वर्ग सतत् साधना व स्वाध्याय में ही तल्लीन रहते हैं। पू. आर्यिका श्री ध्यान अध्ययन से विशेष प्रेम रखती हैं। हमेशा-हमेशा स्वाध्याय करना उनका विशेष कार्य है, कहती हैं- मनुष्य पर्याय मिली है उसमें भी जैनकुल मिला है, जिनवाणी मिली और फिर तुम्हें जवानी मिली है तो उसका उपयोग कर लो वृद्धावस्था में पढ़ाई नहीं होती है उस समय माला फेरना और अभी स्वाध्याय कर लोगे तो उसका चिंतन उस समय करते रहना। कक्षा के बीच में ही एक ब्रह्मचारिणी बहिन ने कुछ पूछा- माता जी सामान्य से तो स्वाध्याय में मन लग जाता है, पर जब बीमार हो जाते हैं तो पढ़ने में मन नहीं लगता है, अच्छा नहीं लगता है। तो पूज्य आर्यिका श्री ने कहा- क्या अच्छा नहीं लगता है? यह अच्छा- बुरा तो अपना मन होता है कोई समय, पर-वस्तु, परिस्थिति अच्छी बुरी नहीं होती है। मैं जब बीमार होती हूँ तब मुझे तो अच्छा लगता है, वैराग्य आता है, शरीर की नश्वरता, अनित्यता, क्षण भंगुरता समझ में आती है। जब हमारा शरीर ही साथ नहीं दे रहा है तो दूसरे किससे आशा करें कि वह हमारा साथ देगा। **आचार्य गुणभद्रस्वामी** आत्मानुशासन में कहते हैं-''शरीर में बीमारी आती है तो शरीर के प्रति हमारा ममत्व परिणाम घटता

है और यह भी ज्ञात होता है कि जिस शरीर को हृष्ट-पुष्ट करते रहते हैं या इसको पुष्ट करने में पापात्मक कार्य भी कर लेते हैं, वह इतना क्षणभंगुर है, नाश होने वाला है, इससे हमारा मोह करना, राग करना गलत है।'' इस प्रकार शरीर की स्थिति देखकर वैराग्य आता है। इसीलिये मैं सोचती हूँ शरीर के स्वरूप का चिंतन कराने के लिये उससे विरक्त भाव वृद्धिंगत कराने के लिए बीमारी आना चाहिए और मेरा तो बीमारी में स्वाध्याय करने में बहुत मन लगता है। मैं जब किशनगढ़ में बीमार हुयी थी तो कर्मकाण्ड का शुद्धि पत्र बनाया पूरा दिन पता ही नहीं चलता था कि कब निकल गया, जब सिंगोली में पीलिया व मलेरिया हुआ था तब बृहत्स्वयंभू स्तोत्र पाठ याद किया था। अपना मन बड़ा चंचल है इसको तो पकड़कर रखना चाहिये।

सुनकर सभी बहिनों व आर्यिकाओं का मन स्वाध्याय में लीन हो गया और पू. आर्यिकाश्री को आदर्श बनाकर सभी ने भी ऐसा ही करने का भाव बनाया।

❑❑❑

4. निस्पृहता

महाराष्ट्र प्रांत के वर्षायोग की बात है पू. आर्यिकाश्री को आँख में कुछ फुंसी-सी हो रही थी। सूजन भी आ रही थी। जलन भी हो रही थी। हम लोगों ने कहा- कि डॉक्टर को दिखाते हैं। तब पू. आर्यिकाश्री ने कहा नहीं, 3 दिन तक कुछ भी नहीं करना है न कुछ लगाना है, न डॉक्टर को दिखाना है। तब सभी ने कहा नहीं माताजी आँख वाली बात है आप ऐसा नहीं करो। ठीक है, आप कुछ उपचार नहीं करवाना, परंतु डॉक्टर को तो दिखा दो कारण समझ में आ जायेगा। पू. आर्यिकाश्री बोलीं-कारण डॉ. क्या बतायेगा मैं बताती हूँ, असाता वेदनीय कर्म इसका कारण है और फिर यह सब पुद्गल है, पुद्गल में परिणमन होता रहता है, हो रहा है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण की पर्यायों का परिवर्तन है, इसमें राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। दुख आया है तो जायेगा भी। कुछ भी स्थायी रहने वाला नहीं है सब नष्ट होने वाला है, क्षणभंगुर है। इन सभी में समता भाव रखना चाहिए। और पू. आर्यिकाश्री के समता भाव का परिणाम उनके शरीर के प्रति निस्पृहता का और संकल्प शक्ति का प्रभाव यह हुआ कि 3 दिन पूरे होने के पहले ही आँख की सूजन जलन सभी समाप्त हो गयी। हम सब प्रसन्न हो रहे थे तो पू. आर्यिकाश्री ने कहा इसमें प्रसन्नता की बात क्या है यह सब तो होता रहता है, असाता साता में बदल गयी। कर्म का उदय दोनों में ही है

और कर्म का उदय दुखदायी है उसमें समता परिणाम रखकर हम कर्म क्षय का पुरुषार्थ करें यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। धन्य है पू. आर्यिकाश्री!

चांद-सी शीतल हो तुम फिर भी तुममें राग नहीं है।
सूरज-सा है तेज चमकता फिर भी तुममें आग नहीं है।
मोक्ष मार्ग पर अविरल चलती फिर भी भागमभाग नहीं है।
ऐसी पूज्य गुरु माता को तन से बिल्कुल राग नहीं है।

तुम जैसा बनने को ही तुम्हारे चरणारविंद में कोटिशः नमन-नमन-नमन॥

❑❑❑

5.धर्मध्यान क्या है?

श्रीरामपुर वर्षायोग में व्रतों का महीना कहा जाने वाला भादों का महीना पर्युषण पर्व के साथ समाप्त होता है। इन्हीं पर्युषण में श्रावक विशेष रूप से धर्माराधना करता है यदि साधु का सान्निध्य मिल जाये तो उसे 'सोने पे सुहागा' जैसा लगता है। पू. आर्यिकाश्री की वरदानी छांव तले **श्रावक संस्कार शिविर** पर्वराज पर्युषण में चल रहा था जिसमें श्रावक का धर्म क्या है? श्रावक अपने कर्त्तव्यों का पालन करके किस प्रकार परम्परा से मोक्ष प्राप्त कर सकता है? सिखाया जा रहा था। त्रिकाल सामायिक, स्वाध्याय, व्रत, उपवास के साथ चल रहे थे। त्यागधर्म के दिन पू. आर्यिकाश्री का भी उपवास था। कोई शिविरार्थी 10 उपवास करने वाले थे, कोई 8 उपवास वाले थे, कोई 5, कोई 6, कोई 4 किसी का तेला था, अन्य सभी आहार चर्या के बाद आकर पू. आर्यिका श्री के पास में बैठे हुए थे। हम सभी आर्यिकायें भी आहार करके आ चुके थे किसी एक शिविरार्थी भाई ने पू. आर्यिकाश्री से कहा- माताजी सभी को उपवास करते देखकर हमारे भाव भी उपवास करने के हो रहे हैं। सुनकर पू. आर्यिका श्री बोली उपवास करना ही धर्म नहीं है यह एक प्रकार से प्रशस्त आर्त्तध्यान है। तभी दूसरे शिविरार्थी ने कहा उपवास करने से समय बच जाता है धर्म्यध्यान हो जाता है। तब पू. आर्यिका श्री ने कहा धर्म्यध्यान किसे कहते हैं? क्या भोजन का

समय बच गया तो धर्म्यध्यान हो गया। वह भाई बोला हम तो कुछ नहीं जानते आप ही बताइये धर्म्यध्यान क्या है? पू. आर्यिकाश्री बोलीं- **आचार्य उमास्वामी महाराज** ने तत्त्वार्थसूत्र में आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय ये 4 धर्म्यध्यान बताये हैं- जरा साचो, विचार करो अरे भोजन करते-करते, लेटे-लेटे भी धर्म्यध्यान हो सकता है। पूजा कर ली, भक्ति कर ली, शास्त्र पढ़ लिया इतना ही मात्र धर्म्यध्यान नहीं है। उपवास मात्र से धर्म्यध्यान हो यह जरूरी है ''कषायों की मंदता, कषायों का शमन करना ही सबसे बड़ा धर्म्यध्यान है।'' व्रत, उपवास, पूजा, आरती, स्वाध्याय आदि ये सभी बातें बाह्य रूप क्रियायें हैं। अंतरंग में कषायों को कम करना परिणामों में निर्मलता लाना, पाँच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना, प्रतिकूलता में भी हमारे परिणाम धर्म करने रूप बने रहें, यही सबसे बड़ा धर्म्यध्यान है। इसके बारे में विशेष रूप से विचार करना चाहिये। इस प्रकार धर्म्यध्यान की वास्तविक परिभाषा हमें सुनने को मिली। वास्तव में कषायों से ही तो हमारा संसार बढ़ता है, बढ़ रहा है, अपनी कषायों को संयमित /नियंत्रित कर और धर्म्यध्यान के माध्यम से हम अपने संसार को सीमित कर सकते हैं तो कषायों को शमन करना ही होगा, तभी संसार सागर समाप्त कर सकते हैं।

❑❑❑

6. ''कर्मबंध ही ना हो''

सर्दी का समय था। सायंकाल पृच्छना स्वाध्याय चल रहा था, तभी एक बहिन ने पूछा-पू. माता जी मोक्षमार्ग में पुण्य हो तो अच्छा रहता है जैसे आप पुण्यशाली हैं तो सभी आपके आगे-पीछे घूमते रहते हैं वैसे ही हमारा पुण्य हो तो सभी हमें पूछेंगे, चारों तरफ खड़े रहेंगे, आदर सत्कार करेंगे, उसका ऐसा भाव लग रहा था। सुनकर थोड़ी देर बाद पू. आर्यिका श्री ने कहा- यदि पुण्य को चाहते हो तो पहले पाप का उदय बुलाना पड़ेगा। पहले असाता वेदनीय को बुलाकर बीमार होना पड़ेगा फिर चारों ओर लोग खड़े रहेंगे, बहुत सारे डॉक्टर आयेंगे देखने के लिए सभी तुम्हारी सेवा के लिये तत्पर रहेंगे, परंतु ऐसा पुण्य क्या काम का जिससे हमें बीमार होना पड़े, फिर सब लोग सेवा करें। अरे! ऐसा भाव होना चाहिये कि हम बीमार ही न हो। हम ऐसा काम करें कि जिससे असाता ही न बंधे। प्रतिसमय यह सोचें कि हमें कर्म का ही बंध न हो या हमारे परिणाम कैसे हैं उनके माध्यम से कौन से कर्म का बंध हो रहा है ? परिणामों में स्थिरता होनी चाहिए, परिणाम शुभ हैं तो साता तो अपने आप आयेगी और साता का उदय मतलब पुण्य का उदय है परिणाम अच्छे हैं तो हमेशा पुण्य कर्म बंधेगा। फिर पुण्य कमाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अगर सुखी रहना है तो पुण्य की कल्पना नहीं करना चाहिये।''हमारी धारणा मात्र आत्म कल्याण

की होनी चाहिए। पुण्य से संसार की वृद्धि होती है न कि संसार सीमित होगा।'' इसीलिये बहिन पुण्य बढ़ाने की तरफ ध्यान न देकर कर्म निर्जरा किससे हो और नवीन कर्म का बंध न हो ऐसे परिणाम रखो ''मोक्षमार्ग भावों पर आधारित है, न कि पुण्य पर।''

❑❑❑

7. बाहर मत उलझो

महाराष्ट्र के वर्षायोग की बात है पू. आर्यिकाश्री का उपवास था, कुछ श्रावक बाहर से आये हुये थे, उन्होंने महाराष्ट्र की पूजा अभिषेक की पद्धतियाँ देखकर, सुनकर पू. आर्यिकाश्री से बोले जब आर्यिकाओं के भी 28 मूलगुण होते हैं तो आर्यिका की पूजा क्यों नहीं होती है? भगवान को फूल-फल क्यों नहीं चढ़ा सकते हैं ? क्षेत्रपाल-पद्मावती की पूजा क्यों करते हैं ? और भी अनेकानेक प्रश्न कर रहे थे, सुनकर पू. आर्यिकाश्री बोलीं-तुम इन सब बातों में क्यों उलझते हो, ये सब बाहर की क्रियायें हैं, इन सबसे धर्म नहीं होता है, इन सबका सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से कोई संबंध नहीं है। सम्यग्दर्शन पूजा की पद्धति से, पूजा की द्रव्य से नहीं, वरन् सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा करने से होता है और फिर इन सब बातों से आत्मकल्याण होने वाला नहीं है। आत्मकल्याण तो अपने परिणामों से होता है, अन्दर कषाय भाव का न होना ही धर्म है। उपवासादि तप कर लिया और बाहर आदर-सत्कार पाकर मान कषाय की पुष्टि कर ली तो वह आत्मकल्याण में साधक नहीं बनेगा। सम्मान नहीं मिला तो मन में अच्छा नहीं लगता है, चेहरा उदास हो जाता है, सम्मान मिल गया तो मन खुश हो जाता है, चेहरा प्रसन्नता से फूल जाता है। यह धर्म नहीं है। सम्मान मिले, न मिले, दोनों में समता भाव रखना ही आत्मा का धर्म है। मन में

राग-द्वेष परिणाम का नहीं आना ही साधना है। साधु को हमेशा-हमेशा ख्याति, पूजा, लाभ, प्रतिष्ठा आदि बातों को छोड़कर अपना उपयोग ध्यान-साधना, ज्ञान-आराधना में ही लगाना चाहिए। पू. आर्यिकाश्री ने कहा-मेरा तो एक ही काम है कि अगर श्रावक आता है तो उसको पढ़ा देती हूँ उपदेश दे देती हूँ, यदि नहीं आये तो अपना स्वाध्याय कर लेती हूँ, इन सब बातों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। इतना-सा समय मिला है उसी को इसमें लगा दूँगी तो धर्म्यध्यान कब करुँगी, रात तो सोने में ही निकल जाती है, दिन के समय का उपयोग अच्छी तरह से कर लें। जीवन के अमूल्य क्षण ऐसे ही निकलते जा रहे हैं, ये क्षण वापस लौटकर आने वाले नहीं हैं। धर्म्यध्यान सुलभ नहीं है और रही बात तुम्हारे प्रश्नों की, तो मुझे इस संबंध में कुछ नहीं आता, हम ये सब क्यों नहीं करते क्योंकि हमारे गुरु का आदेश है। हम अपने गुरु की आज्ञा पालन करते हैं। इस प्रकार पू. माताजी ने श्रावकों को धर्म भी समझा दिया और अपने आपको फिजूल की बातों से, निंदा से भी बचा लिया।

❑❑❑

8. साधना क्या है ?

11 अगस्त 2006 की बात है, मेरा स्वास्थ्य यकायक बहुत ही खराब हो गया था। चिकनगुनिया हुआ उसके बाद ही एक कान से पूरा सुनाई भी नहीं दे रहा था। चक्कर भी आ रहे थे। डॉ. ने इन सबका का कारण सायनस बताया। उपचार चालू हो गया करीब एक माह निकल गया लेकिन कुछ भी सुधार नहीं हो पा रहा था। एक दिन मुझे बहुत विकल्प हो रहा था। चेहरा उदास था। पूज्य आर्यिकाश्री ने मुझे उदास देखकर कहा पवित्रमतीजी तुम्हें अपने स्वास्थ्य की बहुत चिंता लग रही है? तुम्हारा इस प्रकार उतरा हुआ चेहरा देखकर मुझे भी तनाव होता है विकल्प होता है तुम बताओ आखिर तुम इतना विकल्प क्यों कर रही हो? तब मेरी आँखों में आँसू आ गये और मैंने कहा पूज्य माताजी मुझे स्वास्थ्य की नहीं वरन् साधना का विकल्प हो रहा है कि मैं चातुर्मास में भी कुछ भी साधना नहीं कर पा रही हूँ। सुनकर पूज्य माताजी ने कहा कि ये बताओ कि साधना किसे कहते हैं ? क्या मात्र उपवास करना, स्वाध्याय करना ही साधना है ? अरे, यह सब तो बाहर की क्रिया है। यह लोगों के देखने में आ जाती है। मैंने कहा इतने सारे उपवास हैं, मैं कब करुँगी? तब पूज्य माताजी ने कहा-उपवास करना साधना नहीं वरन् अपनी कषायों को मंद करना ही साधना है। साधना भी तभी होती है जब हमारे अंदर कषाय रूप परिणाम,

संक्लेश रूप परिणाम ही उत्पन्न न हों।

यह भी एक लोभ कषाय का परिणाम है। जब तक अनंतानुबंधी कषाय का अभाव नहीं तब तक सम्यग्दर्शन की भूमिका ही प्रारम्भ नहीं है। कषाय का कम होना ही साधना है। लेश्या की विशुद्धि ही साधना है इसलिए तुम विकल्प नहीं करो। लेटे-लेटे भी साधना कर सकते हो अपने आपको संक्लेश से बचाना भी तो साधना है इससे भी कर्मों की निर्जरा होती है।

जैसे माँ बच्चे को कभी डाँटकर, कभी प्यार से, दुलार से समझाकर अपने मार्ग पर बढ़ाती रहती है वैसे ही पूज्य आर्यिकाश्री ने मुझे समझाकर मेरे मन के विकल्प शांत कर दिये और मैं भी उनकी वात्सल्यमयी गोद में मुँह छुपाकर जैसा उन्होंने कहा वैसा करने लगी और मेरा मन शांत हो गया आत्मा भी उसी साधना की तरफ बढ़ने लगी।

इस प्रकार गुरु माँ का उपकार इस जन्म में नहीं वरन् जब तक जन्म लेना ही समाप्त न हो जाये तब तक नहीं चुका सकती हूँ न भूल सकती हूँ और उनका उपकार जब मैं सिद्धालय में जाने का पुरुषार्थ पूर्ण कर लूँगी तब पूरा हो पायेगा।

ऐसी गुरु माँ को मेरा बारंबार नमन.....।

❑❑❑

9. असीम आत्मविश्वास

बात उस स्थान की है जहाँ के दर्शन करने के भाव माँ श्रीमति के उस समय हुये जब बालक विद्याधर गर्भ में आये थे। आपको याद आ गया होगा विद्यासागर अक्किवाट। यहाँ से 8 किलोमीटर दूर खिरदापुर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। आदिनाथ भगवान् की बहुत ही प्राचीन मनोज्ञ विशाल पद्मासन प्रतिमा है। यहीं पर जुगुळ (कर्नाटक)के श्रावकों ने बताया कि पूज्य मुनि द्वय उत्तमसागर जी व सुपार्श्वसागर जी पास में ही वस्तुवाड में विराजमान हैं। जानकारी मिलते ही हम सभी की भावना उनके दर्शन की हुयी, फिर भी हम सभी के मन में विकल्प था कि पूज्य माताजी को पूरा अंतराय है ,कल चतुर्दशी है, मौसम गर्मी का है, समय दोपहर का है, सूर्य अपने पूर्ण प्रताप सहित चमक रहा है, इसीलिए सोचा सायं 5 बजे तक बिहार कर देंगे और दूसरे दिन प्रातःकाल पहुँच जायेंगे। यह हम सोच ही रहे थे कि पूज्य आर्यिका से कहें कि अपन ऐसा कर लेते हैं लेकिन उसके पहले ही पूज्य माताजी कमण्डलु लेकर खड़ी हो गयीं कि चलो अभी बिहार करते हैं। मुनि महाराज के दर्शन हो जायेंगे। फिर भी साहस करके उपर्युक्त बात कही तो पूज्य माताजी बोलीं- नहीं, चलो अभी दुगुना लाभ है, अंतराय में धूप में चलेंगे तो निर्जरा होगी और मुनि दर्शन के लिए जा रहे हैं तो पुण्य मिलेगा ही। लगभग 2 बजे ही बिहार कर दिया चलते-चलते हम

सभी ने कहा कितनी गरम सड़क है, रोटी सेंक लो तो सिक जाय। सुनकर पूज्य आर्यिकाश्री ने कहा कर्म निर्जरा ऐसे ही नहीं होती है। सुकुमाल को देखो कितने सुकोमल थे, सरसों के दाने चुभते थे फिर भी कितनी तपस्या की थी। अपन तो कर ही क्या रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं। शाम को 11 कि.मी. चलकर वस्तुवाड पहुँचे मुनि द्वय के दर्शन करके प्रसन्नता हुयी।

दूसरे दिन पूज्य उत्तमसागर जी महाराज से उनके द्वारा लिखित चौबीस भगवान् की स्तुति के लिए कहा कि बहुत अच्छी लगी, पढ़ने में आनन्द आता है। मैंने कहा महाराज जी मुझे भी ऐसी रचना करना सिखा दो। सुनकर मुनिश्री बोले-तुम कैसी हो? मुझसे कहती हो कि सिखा दो, तुम तो साक्षात् सरस्वती के साथ रहती हो। तुम्हारी माताजी के कण्ठ में तो सरस्वती विराजमान हैं, जिन्होंने कल्पद्रुममण्डल विधान, तत्त्वार्थसूत्र विधान, सम्मेदशिखर विधान, चौंसठऋद्धि विधान, कुलभूषण देशभूषणजी का महाकाव्य जैसे बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना कर दी। उनके पास रहती हो उनसे सीखो। मराठी में श्रावकों को पूज्य आर्यिकाश्री के ज्ञान व चर्या के बारे में बताया। तुम लोगों को वर्तमान में आर्यिका चर्या को देखना है तो आर्यिका विज्ञानमती माताजी को देखो। पंचमकाल में भी चौथे काल की चर्या करती हैं। इतने लंबे विहार में भी, गर्मी में भी, अंतरायों के बाद भी उपवास करना और उपवास करके भी अपनी साधना, ध्यान-अध्ययन में कोई कमी नहीं आने देना। चेहरे पर सहजता, सौम्यता, सरलता, प्रसन्नता बनी रहना, इनके अटूट आत्मविश्वास का ही परिणाम है। तुम लोग भी इनके दर्शन करके

धन्य हो गये हो। तपस्या, साधना सुनकर देखकर मुनिश्री ने कहा ऐसी तपस्या व उसके साथ परिणामों की निर्मलता ही इनके स्त्रीलिंग छेदने में कारण बनेगी। मुनिश्री बहुत प्रसन्न हो रहे थे कि आज भी सीता, अंजना जैसी चर्या करने वाली, प्रतिकूलताओं को भी अनुकूलता बनाने वाली और समता परिणाम रखने वाली आर्यिका भारत में हैं। तुम तो अपने आपको भाग्यशाली समझो कि तुम्हें इतनी श्रेष्ठ आर्यिका के श्री चरणों में रहने को मिलता है। इनके पास रहकर भी तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।

यह सब बातें पू. आर्यिकाश्री सुन रही थीं, उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था। वो बड़े विनम्र भाव से बोलीं- महाराज श्री आप मेरी प्रशंसा मत करिए अपने गुरु को देखती हूँ तो ऐसा लगता है कि वो जितना करते थे /करते हैं उसका एक अंश भी हम नहीं कर पा रहे हैं और इतने मात्र से कर्मक्षय नहीं होंगे। अभी तो साधना की पृष्ठभूमि भी तैयार नहीं हुई है और आपको ऐसा लग रहा है तो यह आचार्यश्री की ही कृपा है, आप सभी गुरुजनों का आशीष ही मुझे हिम्मत देता है कि मैं अपने नियमों को दृढ़ता से पालन कर पाती हूँ और यह मानव पर्याय मिली है तो कर लूँ नहीं तो यह जा ही रही है, देखते-देखते चली ही जायेगी.....।

❑❑❑

10. मैं कौन हूँ ?

दिसम्बर 2006 में अतिशय क्षेत्र जिंतूर में आर्यिकाश्री संघ सहित विराजमान थीं। जिंतूर के दर्शन करके सभी का मन प्रसन्न था। 11000 किलो के नेमिनाथ भगवान् की प्रतिमा, 9000 किलो की पार्श्वनाथ भगवान अधर में मात्र एक जगह से इंच मात्र सहारे से विराजमान हैं। वहीं भगवान् महावीरस्वामी के समवशरण से पवित्र भूमि पर जाकर सभी के परिणामों में निर्मलता आ रही थी, विशुद्धि बढ़ रही थी।

वहीं प्रातःकाल कक्षा में प्रसंगवशात् पू. आर्यिकाश्री ने अपना चिंतन सुनाया कि मैं सोचती हूँ त्याग, तपस्या, साधना, ध्यान, अध्ययन तभी सार्थक है जबकि हम पाँच इन्द्रियों के विषयों से अपने आपको दूर रखें। कषाय रूप परिणाम हमारे अन्दर नहीं आ पायें। यदि पञ्चेन्द्रिय के विषय भोगों में लगे रहे, कषाय मंद नहीं हुई तो त्याग, तपस्या, साधना से कोई प्रयोजन नहीं है। सुनकर नीली बहिन ने प्रश्न किया। पू. माताजी जब कषाय का उदय आता है, उस समय क्या चिंतन करें कि कषाय बढ़ें नहीं? पू. आर्यिकाश्री ने कहा- उस समय सोचो मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया हूँ? मुझमें कैसे गुण हैं ? मुझे इस जीवन में क्या प्राप्त करना है? क्या करना था क्या कर रहा हूँ ? अपने आपको सम्बोधो, हे आत्मन्! तूने ये क्या करना प्रारम्भ कर दिया है ? तू क्या कर रहा है ? इस समय

आत्मकल्याण रूप मोक्षमार्ग को छोड़कर बाह्य में मान-सम्मान और पंचेन्द्रिय के विषयों के लिए कषाय कर रहा है, इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में राग-द्वेष कर रहा है। जबकि ये सब पुण्य के उदय हो तो मिलते हैं पाप का उदय हो तो नहीं मिलते और यदि मिल भी गये तो मिलकर भी नहीं भोग पायेंगे। फिर क्यों इन क्षणभंगुर विषय भोगों के पीछे मैं अपनी आत्मा का पतन करने वाले कषाय रूप परिणाम करें ? जब कषाय का उदय हो तब ही ऐसा नहीं सोचो वरन् जब कषाय का उदय नहीं आ रहा उस समय भी और मैं तो कहती हूँ क्षण- प्रतिक्षण यही सोचना चाहिए कि-

विष से भी अरु विषधर से भी भोग रहे जहरीले हैं।
असह्य दुख ये देते हैं नित अरु भवदधि में भी पेले हैं॥

❑❑❑

11. मन को मत घुमाना

गेवराई (महाराष्ट्र) से जब केशवपुरी अतिशय क्षेत्र के लिए बिहार किया, पू. आर्यिका श्री का चतुर्दशी का उपवास था। क्षेत्र की दूरी 15 किलोमीटर थी, सोच रहे थे दो टाइम में (सुबुह व शाम) पहुँच जायेंगे, लेकिन स्त्री पर्यायगत समस्यायों के कारण पू. आर्यिकाश्री ने शाम को ही 15 किलोमीटर चलने का मन बना लिया। रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़ घुमावदार था। दोपहर 2:30 बजे ही बिहार कर दिया। चलते-चलते रास्ते में आर्यिका आदित्यमती जी ने कहा रास्ता कितना घूम-घूमकर है, टेढ़ा-मेढ़ा भी है। सुनकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा-माताजी रास्ता भले ही घुमावदार हो टेढ़ा-मेढ़ा हो, लेकिन हमारा मन इधर-उधर नहीं घूमना चाहिए। हमारे परिणाम टेढ़े-मेढ़े नहीं होना चाहिए। रास्ता घूम-घूमकर भी हम केशवपुरी पहुँच जायेंगे, लेकिन यदि मन घूम गया तो सिद्धपुरी का रास्ता भटक जायेंगे। भव-भव में घूमना पड़ेगा, संसार सागर बढ़ जायेगा इसीलिए मन को मत घुमाना। रास्ता घूम रहा है तो घूमने दो। धन्य है पू. आर्यिकाश्री जो कैसी भी परिस्थिति हो, हमेशा लक्ष्य पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखती हैं और यही चिंतन चलता रहता है कि हमसे कोई कार्य ऐसा न हो जाये, जिससे हमारा संसार सागर वृद्धिंगत हो, वरन् हमेशा हर क्रिया, हर विचार, हर बोल, हर सोच यही निकलती है कि शीघ्र ही हम संसार सागर से पार हो

जायें और हमें भी अपनी सोच से क्रियायों से, वचनों से अपने लक्ष्य की तरफ ही इंगित करती हैं। ऐसी परमोपकारी गुरु माँ के चरणों में कोटि-कोटि नमन नमन नमन .....।

❑❑❑

12. बाहर मत, अंदर का पढ़ो

सर्दी के समय में प्रातःकाल 5:30 बजे से हम लोगों की क्लास लगती है। बिहार में भी अध्ययन करवाती ही हैं। एक स्कूल में रात्रि विश्राम हुआ। जिस कमरे में हम रुके थे, वहाँ दीवाल पर कुछ लिखा था। प्रातःकाल जब क्लास लगने वाली थी, उसी समय एक बहिन की दृष्टि सामने दीवाल पर कुछ लिखा था वहाँ पर गई, उसे पढ़कर दूसरी बहिन को बताया और दोनों हँसने लगीं। उनको हँसते हुये देखकर पू. आर्यिकाश्री ने पूछा- क्यों हँस रही हो? कोई नयी-पुरानी बात है तो हमें भी बताओ। बहिन बोली सामने दीवाल पर क्या लिखा है उसे पढ़कर हँसी आ गई सुनकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा दीवाल पर लिखा हुआ पढ़कर हँस रही हो, लेकिन अपनी आत्मा रूपी दीवाल पर क्या लिखा है उसे पढ़ लो पढ़कर अपने को सुधार लो तो कल्याण हो जायेगा, बाहरी दीवालों पर बहुत लिखा है उसको कब तक पढ़ोगे पूरा जीवन उन्हीं के पढ़ने में निकाल दो तो भी नहीं पढ़ पाओगे। इसीलिए बाहर क्या लिखा है उसे मत पढ़ो अंदर लिखा है उसको पढ़ो। अनादिकाल से बाहर ही बाहर पढ़ते आये हैं इसीलिए संसार में भटक रहे हैं।

धन्य है पू. आर्यिकाश्री जिनकी दृष्टि हमेशा-हमेशा अंदर की ओर ही रहती है। धन्य है हम भी जो अंतर्मुखी गुरु की छत्र छाया में मोक्षमार्ग पर बढ़ रहे हैं।

❑❑❑

13. शरीर नहीं, आत्मा को देखो

प्रकरण तमिलनाडु प्रांत का है। आरपाकम् ग्राम में 12000 वर्ष पुरानी आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा है। वहीं पर रात्रि विश्राम करके प्रातःकाल अग्रजा आर्यिका वृषभमती माताजी ने पू. आर्यिकाश्री के चेहरे की तरफ देखकर कहा कि आपके चेहरे पर ये काले-काले दाग कैसे बन गये? सुनकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा- अरे! माताजी ये तो शरीर है तुम शरीर को देख रही हो। इससे आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जब साधक अपनी साधना करता है तो शरीर के बारे में विचार नहीं करता है। ये पुद्गल है जीर्ण, शीर्ण, गलना यह सब शरीर का धर्म है। आत्मा तो इन सबसे भिन्न है। इस शरीर से आत्मा का क्या सम्बन्ध है? इसमें राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। क्या दाग हो गये तो हम सुंदर नहीं दिखेंगे? अच्छा है, कोई मोहित नहीं होगा, जिससे हमारा शील सुरक्षित रहेगा, कोई भक्त नहीं बनेगा तो साधना भी निर्विकल्प होगी। देखो सनतकुमार चक्रवर्ती कितने सुंदर थे, उनकी सुंदरता को देखने स्वर्ग से देव भी आ गये, लेकिन उन्होंने उसका घमण्ड कर लिया जिससे पाप का ही बंध हुआ और मुझे तो ये दाग दिख ही नहीं रहे हैं। शायद इसीलिए आचार्यों ने साधु को दर्पण देखने के लिए मना किया, ताकि चेहरा नहीं देखोगे तो विकल्प भी नहीं होगा। शरीर की तरफ दृष्टि नहीं जायेगी और वह अपनी साधना कर सकेगा। आत्मा रूपी दर्पण को

देखकर अपनी आत्मा को पाने का पुरुषार्थ हमें करना चाहिए।

जयवंत हो ऐसी हमारी पूज्य गुरु माँ जिनका अपने शरीर से बिल्कुल भी राग नहीं है, मात्र आत्मा के प्रति ही अनुराग है आत्म कल्याण की तरफ ही दृष्टि बनी रहती है। हर पल अध्यात्म रस में सराबोर रहने वाली पू. आर्यिकाश्री के चरणों में उन जैसा बनने की भावना से बारम्बार वंदामि.....।

❑❑❑

14. सबसे बड़ा पाप

संदर्भ ग्रीष्मकाल का है। गोमटेश भगवान का महामस्तकाभिषेक देखकर लौट रहे थे। गजपंथा जाने का विचार चल रहा था, उसी समय कोपरगांव गये। वहाँ से बिहार हुआ, उस समय साथ में कुछ श्रावक भी चल रहे थे। रास्ते में चलते-चलते बात-बात में वे साधु की निंदा करने लगे। बात बढ़ते-बढ़ते 10-15 मिनिट तक वे ऐसा निंद्य कार्य करते रहे और वह स्थान आ गया जहाँ रात्रि विश्राम हेतु रुकना था। पू. आर्यिकाश्री को उनकी यह सब बातें अच्छी नहीं लग रहीं थीं, उस समय उनका मौन था। स्थान पर जाकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा अच्छा हुआ हम तुम्हारे यहाँ से आ गये, मैं तो सोचती थी तुम लोग धर्मात्मा हो, अच्छा स्वाध्याय करते हो, लेकिन आज तुम्हारी बातें सुनकर लगा तुम्हारा स्वाध्याय तो गधे की पीठ पर लदे हुए शक्कर की बोरी के समान है, मात्र पुस्तकीय ज्ञान है, ज्ञान का फल तो आया ही नहीं है। सुनते ही सभी के चेहरे एकदम उदास हो गये, उनके उदास चेहरे देखकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा बुरा मत मानो, लेकिन विचार करो हम क्या कर रहे हैं? साधु की निंदा मतलब नीच गोत्र का बंध और नीच गोत्र का बंध मतलब दूसरा गुणस्थान। कहाँ रहा हमारा सम्यक्त्वपना? कहाँ रहे हम श्रावक? दूसरी तरफ से विचार करें तो किसी की भी निंदा नहीं करना चाहिए, सुनना भी नहीं चाहिए और फिर साधु की निंदा का फल तो नरक निगोद की यात्रा और जो आज तुम सफेद दाग की बीमारी देखते हो, जिसे कुष्ठरोग कहते हैं, वह साधु की निंदा,

साधु के तिरस्कार का ही फल है, संसार में बड़ी-बड़ी बीमारी हाने पर भी लोग इतनी हीन दृष्टि से नहीं देखते, जितना कि एक कुष्ठ रोगी को। क्योंकि सभी जानते हैं कि इसने मुनि निंदा या अपमान का भारी पाप किया होगा। अतः तुम लोग अपने सभी अच्छे कामों के साथ यह एक अच्छा काम और कर लो नियम ले लो कि कभी भी साधु की निंदा नहीं करेंगे। हमें उसका काम अच्छा नहीं लग रहा, मौन हो जाओ, अपनी आँखों को भी मौन कर दो। हम तो साधु की निंदा करके पाप ही बांध लेते हैं, जबकि वह साधु अपनी निंदा गर्हा करके प्रायश्चित लेकर अपना भव सुधार लेते हैं और हम निंदा करके अपना भव बिगाड़ लेते हैं। सुनकर सभी के मन में ऐसा लगा कि हमने बहुत बड़ा पाप कर लिया है, वो पू. माताजी से बोले कि हम अब कभी साधु की निंदा नहीं करेंगे, अभी तक हमें किसी ने ऐसा बताया ही नहीं है, आज पता चला यह भी बहुत बड़ा पाप है। आप ही हमारे सच्चे गुरु हैं आपने हमें अधोपतन से बचा लिया। धन्य है आप पू. आर्यिकाश्री जो हमारी गल्तियों को आपने सुधार कर धर्म का सही मार्ग बताया है। अब हम संकल्प करते हैं कि कभी भी साधु की ही नहीं और किसी की भी निंदा नहीं करेंगे और न ही निंदा सुनेंगे। पू. आर्यिकाश्री इसी प्रकार आपकी कृपा दृष्टि हमेशा-हमेशा हमारे ऊपर बनी रहे, ताकि हम जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग का सही-सही अनुशरण कर सकें।

धन्य हैं हमारी गुरु माँ जो सदा पापाचरण से दूर रहती है और हम सभी को भी उस पापात्मक मार्ग से दूर रहने का उपाय बताकर हमें पाप से बचाती रहती हैं। ऐसी परमोपकारी गुरु माँ के चरणों में हर श्वांस का वंदन सहित अर्पण समर्पण है.....।

❑❑❑

15. जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

बात वर्षाऋतु की पू. आर्यिकाश्री के कदम दक्षिण यात्रा के पश्चात् पू. आचार्य श्री के दर्शनार्थ मध्यप्रदेश की तरफ बढ़ रहे थे, इसी बीच औरंगाबाद से एक डॉ. साहब आये, उन्होंने पू. आर्यिकाश्री की चर्या, तपस्या व विचारधारा के बारे में विद्वानों से सुना था तभी से उनके भाव थे कि मुझे एक बार तो पंचम युग में चतुर्थकाल की चर्या करने वाली आर्यिका के दर्शन करना है। जब उन्होंने दर्शन किये तो रोम-रोम पुलकित हो रहे थे, उनकी प्रसन्नता बाहर सभी को दिख रही थी। वे बड़े स्वाध्याय प्रेमी थे, उन्होंने पू. आर्यिकाश्री से आशीर्वाद लेकर प्रश्न पूछने की अनुमति ली। पू. आर्यिकाश्री की अनुमति मिलने पर प्रश्न किया- कि जो 28 मूलगुणों का धारी है परन्तु 28 मूलगुणों का पालन सही नहीं कर रहा है तो क्या उस साधु को नमस्कार करना चाहिए।

पू. आर्यिकाश्री- हाँ, नमस्कार करना चाहिए। हम लोगों को भी आचार्य महाराज ने मूलाचार में कहा है कि तीन दिन तक तो नमस्कार करना चाहिए। हम जिस साधु के भक्त बन जाते हैं वह कुछ भी करे मूलगुणों का पालन करे या न करे हमारी दृष्टि उसके अवगुणों की तरफ नहीं जाती है और हम जिसके भक्त नहीं हैं वह निर्दोष 28 मूलगुण पाले तो भी हमारी दृष्टि उसके अवगुणों की तरफ चली जाती है नहीं दिखते हैं तो भी हम उसके अवगुणों की खोज करते रहते हैं, उसके गुण हमारे लिए दिखते नहीं हैं। हमारी जैसी दृष्टि होती है वैसी

ही सृष्टि नजर आती है। यदि हम आँखों पर पीला चश्मा लगा लेते हैं तो सफेद भी हमें पीला दिखता है। हमें हमारी दृष्टि गुणों की तरफ रखना चाहिए। जब गुण दिखेंगे तो अवगुण नजर ही नहीं आयेंगे।

जैसे किसी साधु को शक्कर की बीमारी है उसकी शक्कर 500 तक पहुँच जाये, उस समय श्रावक कूलर चला दे और वह साधु कूलर की हवा में बैठा है तो आप उसके लिए क्या कहेंगे? यही कहेंगे कि वह 28 मूलगुण का पालन नहीं कर रहा है। डॉ. बोले- मैं तो यही कहूँगा कि वह गलत कर रहा है, अपने मूलगुण का खण्डन कर रहा है। सुनकर पू. आर्यिकाश्री ने कहा - नहीं वह गलत नहीं कर रहा है, क्योंकि भेली बराबर औषधि देने की अपेक्षा डली से काम चल रहा है, तो उचित है। अगर वह कूलर की हवा में बैठकर रत्नत्रय की आराधना करता है तो कोई गलत नहीं है। इतनी शक्कर बढ़ने पर श्रावक यदि उन्हें हवा में नहीं रखता है तो उसका रत्नत्रय छूटता है। इससे तो अच्छा है कि वह कूलर की हवा में रखकर साधु की रत्नत्रय की रक्षा करे। सच पूछो तो साधु स्वयं नहीं रह रहा है, उसको मजबूरी से रहना पड़ रहा है। वह पञ्चेन्द्रिय के विषय भोग के लिए तो नहीं कर रहा है। वह हवा में इसीलिए बैठा है कि हमारा रत्नत्रय नहीं छूटे। इसीलिए साधु की परीक्षा करने से पहले सोच लेना चाहिए कि आखिर इनकी परिस्थिति क्या है?, उद्देश्य क्या है?,वह किस कारण से हवा में बैठा है? हम आगे-पीछे का विचार न करके साधु की निंदा करके नीच गोत्र का बंध कर लेते हैं। साधु तो अपनी निंदा, गर्हा, आलोचना करके पाप नष्ट कर लेते हैं और हम व्यर्थ ही पाप का बंध कर लेते हैं। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह गुणों पर दृष्टि रखता है जो मिथ्यादृष्टि होता है वह अवगुणों की तरफ नजर रखता है। कोई साधु कुछ भी करे हमें

निंदा नहीं करना चाहिए। मिले तो गुण ग्रहण कर लो, नहीं तो अवगुणों की तरफ नहीं देखना चाहिए। डॉ. साहब तुम क्यों इन सब बातों में पड़ते हो तुम्हें यदि अपना कल्याण करना है तो कषायों को कम करो, जितनी-जितनी कषायें कम होगी, उतना-उतना स्थिति अनुभाग बंध कम होगा। डॉ. साहब यह सब सुनकर हाथ जोड़कर अनिमेष पू. आर्यिकाश्री को निहारते रहे। उनके मुख से शब्द नहीं निकल पा रहे थे उन्हें ऐसा लग रहा था कि मैंने आज सचमुच साक्षात् जिनवाणी माँ को प्राप्त कर लिया है, फिर भी वो साहस जुटाकर बोले- पू. आर्यिकाश्री आपके बारे में मैंने विद्वानों के मुख से जो सुना था वो कम था आप तो सच में वर्तमान परिवेश में जहाँ चारों तरफ नकारात्मक विचारधाराओं के कारण आपसी मनमुटाव बढ़ रहा है, वहीं इतनी सुंदर सकारात्मक सोच रखती हैं व उसे प्रस्तुत करके सभी को उसी प्रकार की विचारधारा रखने को कहतीं हैं और बहुत ही सहजता, सरलता से जिनेन्द्र भगवान् का मार्ग बताती हैं मुझे आज समझ में आ गया कि सन्मार्ग क्या है अब मैं आपके अनुसार ही अपने विचार अपना मानस बनाते हुए मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ करुँगा।

धन्य है यह भारत वसुन्धरा जिसे आप जैसा नारी रत्न मिला जिसके प्रकाश में संपूर्ण नारी जगत् ही नहीं वरन् प्राणी मात्र ही दिशा पा रहा है।

भाग्यशाली हैं हम जो आज हमें आपके दर्शन हो गये, हमारा जीवन कृतकृत्य हो गया। ऐसी आर्यिकाश्री के दर्शन सभी को हों, सभी आपके जैसे बनें, इसी भावना के साथ आपको कोटिशः अर्चन, वंदन, नमन-नमन-नमन .....।

❑❑❑

16. अपूर्व सौम्यता

सोनागिरि की यात्रा से आते समय खनियाधाना नगर में कुछ दिन का प्रवास था। जनवरी का महीना था, उसी समय पू. आर्यिकाश्री को असाता वेदनीय के उदय से हरपीज नाम का रोग हुआ। कहते हैं, इस बीमारी में बिच्छू के काटने पर भी शायद इतनी वेदना न हो, जितनी वेदना होती है। डॉ. का कहना था कि यह 21 दिन में स्वमेव ही ठीक हो जाता है, पू. आर्यिकाश्री की भी पहले से ये ही धारणा थी कि कोई भी बीमारी हाथी बनकर आती है और चींटी बनकर वेदना देकर निश्चित चली जाती है और अंतरंग कारण असातावेदनीय कर्म का उदय है उसमें हमारा मोह रंग दिखाता है। यदि हम उस समय मोह को तोड़ देते हैं, तो पुनः असातावेदनीय का बंध नहीं होता है और यदि मोह में फँस जाते हैं, तो पुनः-पुनः वही असाता का बंध होगा और वो फिर-फिर उदय में आयेगा। इसीलिये पू. आर्यिकाश्री ने बड़ी ही समता से धर्म्यध्यान पूर्वक वेदना को सहन किया। उपचार के नाम पर मात्र 2-3 दिन एक लेप लगवाया वो भी हेय बुद्धि के साथ। खनियाधाना समाज वाले बहुत वर्षों से पू. माताजी का इंतजार कर रहे थे। उन्हें सान्निध्य मिला तो बीमारी हो गयी, उनको थोड़ी उदासी-सी आ गई, खेद भी था। पू. आर्यिकाश्री ने उनकी भावनाओं को समझ लिया और उन्हें नियमित प्रवचन की अनुमति दे दी और पू. आर्यिका श्री ने

प्रतिदिन सुबह 10-15 दिन तक सम्यग्दर्शन के बारे में 1:30-1:30 घंटे तक बहुत ही सुंदर विवेचना प्रस्तुत किया, जिसे सुनकर निश्चय मत वालों ने भी अपने विचारों में परिवर्तन कर लिया था। कोई कहता कि आपके हाथ में इतना दर्द है थक गये होगे प्रवचन करके तो पू. आर्यिका श्री कहतीं हैं इसमें थकने की बात क्या है, वेदना की बात क्या है और मुँह में, मन में, दिमाग में वेदना नहीं हो रही है। यह है उपयोग की एकाग्रता। अपना उपयोग बदलकर हम किसी भी वेदना को सहन कर सकते हैं। रात्रि में जब वेदना के कारण नींद नहीं आती तो कहतीं कितना अच्छा है नींद नहीं आती है तो कम से कम भगवान् का नाम तो लेते हैं पूरी रात णमोकार मंत्र की जाप करती रहती हूँ। यदि नींद आ जाती तो सो जाती, नींद नहीं आती तो कम से कम धर्म्यध्यान तो हो गया।

इतनी वेदना में भी कभी चेहरे पर म्लानता नहीं देखी। हमेशा हँसता-मुस्कुराता चेहरा सबकी चिंता को भी कम करता रहता। न कभी आवश्यकों में कमी, न तपस्या में कमी, न ध्यान अध्ययन-अध्यापन में कमी आयी। एक बार उनका सूजा हुआ हाथ देखकर हम लोगों ने कहा कि हाथ-पैर जैसा लग रहा है सुनकर बोलीं चिकना भी है अच्छा है, रात को तकिया लगाने के काम आता है सुनकर सभी को हँसी आ गई। धन्य हैं पू. आर्यिकाश्री जो अपनी वेदना को हँसकर ही सहन करती हैं और दूसरों को भी पीड़ा न हो इसीलिए हँसाती रहती है। बाहर से ये सब करने के बाद भी अंतरंग में अध्यात्म का चिंतन चलता रहता है।

एक दिन समाज के कुछ नवयुवक स्वास्थ्य पूछने आये तो

बोलीं- वेदना शरीर में हो रही है न कि आत्मा में। लेकिन आत्मा के बिना शरीर में दुख और सुख का अनुभव नहीं होता है। उन्हें अनेकांत धर्म से भेद ज्ञान से परिचय कराया। एक नवयुवक ने कहा-पू. माताजी वास्तव में धर्म क्या है, हम जिससे पूछते हैं वही कहता है सुख-दुख आत्मा में नहीं होता शरीर में होता है। यह क्या है? पू. आर्यिकाश्री ने बताया कि यदि सुख-दुख शरीर में होता तो कर्म बंध भी शरीर को होना चाहिये। यदि कर्म का बंध शरीर को होता है तो कर्म अगले भव में साथ कैसे चला जाता है। जबकि शरीर तो यहीं रह जाता है जलकर राख हो जाता है तो कर्म भी जलकर राख हो जाना चाहिये, लेकिन ऐसा होता नहीं है और देखा भी नहीं जाता है वास्तव में निश्चय से आत्मा में कुछ नहीं होता है। लेकिन व्यवहार से आत्मा ही सबका अनुभव करता है। इस प्रकार पू. आर्यिकाश्री ने इतनी वेदना में भी उन्हें नयों की विवक्षा समझाई और उन्हें भी धर्म समझ में आ गया।

इतनी बड़ी बीमारी में वेदना के चढ़ाव में भी इतना अध्यात्म? इसी अध्यात्म के बल से वेदना को सहन करके पूर्व में बंधे कर्मों की निर्जरा करती हैं और नवीन कर्मों का आगमन रोकती हैं, धन्य हैं पू. आर्यिकाश्री जो हमेशा-हमेशा अपने संसार को क्षय करने में उद्यत रहती हैं।

ऐसी पू. गुरु माँ के चरणों में नंत-नंतशः वंदन करते हुये भावना भाती हूँ कि मुझे भी ऐसी आत्मशक्ति मिले, हम भी कर्मों का क्षय करने का ही पुरुषार्थ करें।

❑❑❑

17. जो कह दिया सो करना है

सन् 2000, केसली का अभूतपूर्व वर्षायोग सम्बन्धी पूज्य गुरु माँ की चर्चा आपको सुनाते हैं- वर्षायोग समापन पर पाँच उपवास करने के भाव बना लिये, तीन उपवास का संकल्प तो कर ही लिया और गुरु कृपा से भगवद्भक्ति से अच्छे भी हो गये, लेकिन तीसरे उपवास के दिन सायंकाल देववंदना करने जिनालय पहुँचे और दो उपवास का संकल्प भी कर लिया। भगवान् की वाणी है कि कर्म अदृश्य होकर भी कब, किस समय कहाँ अपना रंग दिखा दें कुछ कहा नहीं जा सकता है और मंदिर से उपवास का संकल्प करके आते-आते ही असाता-वेदनीय का उदय ऐसा आया कि धर्मशाला पहुँचते ही पेट में दर्द हो गया और पेचिश भी होने लगी। सभी को बहुत चिंता होने लगी, रात होते-होते तो अधिक स्वास्थ्य खराब होता जा रहा था, फिर भी आपकी अपनी साधना में, आवश्यकों में कोई कमी नहीं आयी। चौथे दिन सभी ने कहा पानी ले लो, पाँचवा उपवास तो वर्षायोग निष्ठापन का करना ही है। लेकिन पूज्य आर्यिकाश्री ने अटल दृढ़ता के साथ भेदविज्ञान से उन पाँच उपवासों में हुई वेदना को शांति से सहन किया। यह आपका आत्मविश्वास ही है कि एक बार कह दिया तो वो करना ही है, करेंगे। यही इनकी कथनी और करनी की साम्यता को बताती है। शरीर की हालत खराब होने से मंदिर के दर्शन करने नहीं जा पा रही थीं,पारणा के दिन तो समाज वालों ने वहीं श्रीजी का विमान लाकर दर्शन करवा दिये, किन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल से एक ही बात

पू. माता जी करने लगी कि मुझे तो बीच वाले मंदिर के दर्शन करने जाना है सभी संघ वालों ने समाज वालों ने मना किया कि नहीं मंदिर जाते समय घाटी चढ़ना पड़ता है अभी आपकी स्थिति घाटी चढ़ने जैसी नहीं है, लेकिन जो कह दिया सो करना है। जब तक बीच वाले मंदिर के दर्शन नहीं कर लूँगी आहार पर नहीं निकलूँगी और भगवान के प्रति भक्ति देखो, णमोकारमंत्र पढ़ते-पढ़ते एक कि.मी. दूर घाटी चढ़कर बीच वाले मंदिर के दर्शन कर ही लिए। जैसे ही भगवान् के दर्शन किये पूज्य आर्यिकाश्री का स्वास्थ्य अच्छा महसूस होने लगा और बोली मुझे पहले से ही ऐसा लग रहा था कि मैं मंदिर के दर्शन करूँगी तो ठीक हो जाऊँगी। ऐसी श्रद्धा देव, शास्त्र, गुरु के प्रति हो तो निश्चय ही जन्म जरा मरण रूपी रोग भी समाप्त हो सकते हैं हम पूर्ण आत्मिक स्वस्थ हो सकते हैं और कहने लगी जिनके दर्शन से कर्म बली भी क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं तो फिर यह तो छोटा-सा रोग था क्यों समाप्त नहीं होगा? उसको तो समाप्त होना ही पड़ेगा।

धन्य है पूज्य आर्यिकाश्री जिन्होंने इतनी विषम परिस्थिति में अपने नियम को हिलने तक नहीं दिया और न अपनी आस्था को डगमगाने दिया तभी तो उन्हें अदम्य साहस, अद्भुत शौर्य मिला कि एक महीने बाद ही बीना बारह अतिशय क्षेत्र में पुनः पाँच उपवास कर लिये।

भगवान् से प्रार्थना है कि हमारी रत्नत्रय प्रदात्री गुरु माँ का जैसा साहस, शौर्य, आत्मविश्वास हमें भी मिले। हम भी उनके मार्ग का अनुसरण करें इसी भावना से उनके पावन चरणों में नमन.....।

❑❑❑

18. पापोदय में समता ही निर्जरा का कारण

तमिलनाडु यात्रा के दौरान पाण्डिचेरी में वर्षायोग हो रहा था। वर्षायोग में 'आराधनासार समुच्चय' का सामूहिक स्वाध्याय चल रहा था। स्वाध्याय के बीच में प्रकरण वशात् पूज्य आर्यिकाश्री ने अहिंसा और विवेक के बारे में बताया कि हमें अपने हर कार्य में विवेक रखना चाहिए क्योंकि विवेक के बिना अहिंसा धर्म का पालन नहीं हो सकता है। पानी भरने में, कपड़े धोने में, वैयावृत्ति करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए वरन् सावधानी से करो ताकि हिंसा न हो। प्रायः प्रमाद, मोह के कारण हो जाता है और जहाँ मोह आ जाता है तो विवेक शून्य हो जाता है। तभी ब्रह्मचारिणी बहिन ने पूछा पूज्य आर्यिकाश्री हम चाहते हैं कि हम प्रमाद न करें सावधानी रखें और अब ऐसा नहीं करेंगे, सोचते भी हैं लेकिन फिर चूक जाते हैं ऐसा क्यों?

पूज्य आर्यिकाश्री ने कहा- दुकानदार प्रातः 8 बजे से रात्रि 8 बजे तक दुकान खोल कर रखता है लेकिन जब ग्राहक आये तब दुकान बंद करके चला जाये, तो उसकी दुकान कैसे चल सकती है? जब-जब ग्राहक आता है, वो घर भोजन करने चला जाता है या अन्य कहीं स्थान पर चला जाता है तो उसको कभी लाभ नहीं हो सकता है। इसी प्रकार हम हर समय सावधानी रखते हैं लेकिन समय पर उस काम को भूल जाते हैं, हिंसा हो जाती है, प्रमाद कर

जाते हैं। मोह की परिणति ऐसी ही होती है। हम अंधे बन जाते हैं और जहाँ निर्जरा करना थी वहीं पाप का बंध कर लेते हैं। पूरे दिन ध्यान रखा कि मुझे संक्लेश परिणाम नहीं करना है लेकिन जैसे ही निमित्त मिला संक्लेश हो गया। जहाँ पूरे समय संयम रखा और प्रतिकूलता आयी तो असंयमित हो गया। प्रतिकूलता में समता रखने से निर्जरा ही होती है। अगर उस समय समता रख ली तो हमारा स्वाध्याय करना, पढ़ना, लिखना सभी सार्थक हो जायेगा। पाप के उदय में समता रखना ही निर्जरा का कारण है। यह बात हमें हमेशा याद रखना चाहिए।

इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री ने हमें व्यवहारिक क्रियायों में भी अपने आत्मकल्याण का लक्ष्य कैसे रखें यह समझा दिया और जैनधर्म का मूल अहिंसा धर्म का पालन करने की शिक्षा दे दी। सच है-

मुनि विवेक की शिष्या हैं माँ, विवेक ही सिखलाती हैं।
धर्म अहिंसा का पालन ही, मूल धर्म बतलाती हैं।।

ऐसी पूज्य आर्यिकाश्री को हमेशा अहिंसा धर्म का पूर्ण पालन हो, इसी भावना से वंदन...वंदन...वंदन.....।

❑❑❑

19. अदम्य साहस

बिहार में विहार करते करते बहुत ही ऊबड़-खाबड़ कंकर-कण्टक से भरे मार्ग पर ही चलते-चलते बहुत देर हो गयी थी। पूज्य आर्यिकाश्री के पैर पहले से ही छिल गये थे। घाव बने हुये थे ऊबड़-खाबड़, कंकरीले मार्ग पर चलने से खून निकलने लगा। देखते ही हम लोगों ने कहा खून आ रहा है पैरों से। तो बोलीं इसमें दुख की बात नहीं है, खुश होना चाहिए कि अभी शरीर में बहुत खून है, तभी तो बाहर झांक रहा है। बड़ी ही प्रसन्नता से चल रहीं थीं, चलते-चलते बोली अभी तो बाहर दिख रहा है आनंद तो उस दिन आयेगा जब पैरों के निशान खून युक्त बने तो अच्छी कर्म निर्जरा होगी। सुकुमाल-सुकौशल मुनिराजों को याद करो, उनके सामने तो यह कुछ भी नहीं है। हम सभी चिंतित थे कि प्रातःकाल भी ऐसे ही रास्ते से चलना है। रात्रि में बहिनों ने कहा कि पूज्य माताजी घी हल्दी लगवा लो तो बोली अरे इतना मंहगा-मंहगा घी और यह हल्दी किसी और के काम आयेगी, ये पैर तो अभी विश्राम किया नहीं कि ठीक हो जायेंगे। प्रातःकाल विहार हुआ 1-2 कि.मी. चलने के बाद ही कच्चा मिट्टी का अच्छा रास्ता आ गया तो हम सभी को प्रसन्नता हुई कहा कि देखो माताजी रास्ता अच्छा आ गया, पूरा रास्ता ही ऐसा हो तो अच्छा रहेगा। हम सभी की भावाभिव्यक्ति देखकर और सुनकर पूज्य आर्यिकाश्री (उदास होकर) बोली-

निर्जरा का साधन समाप्त हो गया अच्छा नहीं लग रहा है। सोचो विचार करो ऐसी ऊबड़-खाबड़ कंकरीले रास्ते पर चलने से हमारे अंदर उपसर्ग, परीषहों को सहने की शक्ति आती है, कष्टों को सहने की शक्ति मिलती है। संघर्षों में हर्षमय जीवन जीने का साहस मिलता है। इसीलिए हमेशा-हमेशा प्रतिकूलताओं को बुलाते रहना चाहिए और उनमें अपने परिणामों को संभालते रहें ताकि मोक्षमार्ग आगे बढ़ता रहे।

परमोपकारी दीक्षा प्रदात्री माँ की प्रत्येक चर्चा, चर्या हमारे जीवन निर्माण के साथ-साथ जीवन निर्वाण की भी शिक्षा देती हैं। ऐसी माँ के चरणों में वंदामि.....।

❑❑❑

20. ''लक्ष्य याद रखो''

बात दक्षिण यात्रा में दर्शनीय स्थानों की है। जहाँ संसारी प्राणी अपने भोगों की तृप्ति के लिए जाता है वहीं किसी ने कहा कि देखो माताजी यह गार्डन कितना अच्छा है। सुनकर पूज्य माताजी ने कहा अरे तुम सब कहाँ इन पञ्चेन्द्रिय के विषयों में उलझते हो, आत्मा इन सबसे भिन्न है। सोचो हम कितनी बार इस बगीचे के पौधे बने हैं, फूल बने हैं, अब फिर उसी में रीझेंगे तो पुनः पुनः वहीं जन्म होगा, यदि इस समय आयु बंध हो गया तो इसी बगीचे में फल-फूल पौधों में, पानी में जन्म हो जायेगा, संसार ही बढ़ेगा। संसार में व्यक्ति यह नहीं सोचता कि मैं क्या कर रहा हूँ वरन् ये सोचता है कि मुझे कल ये करना है, आज यह करूँगा और यह करना भी दूसरे के लिए ही है। दूसरों के निमित्त से ही क्रोध करता है, मान करता है, मायाचारी करता है, लोभ करता है लेकिन पाप का बंध तो स्वयं के लिए होता है। अनादिकाल से यह संसारी प्राणी निमित्त पर दृष्टि रखता है कि उसने हमारे साथ ऐसा कर दिया, मैंने उसके साथ ऐसा अच्छा-बुरा कर दिया है। हमें तो यह सोचना चाहिए कि हमारे कर्म का ही फल है। पूर्व में पाप किया था उससे जो कर्म बंधे, वो उदय में आ रहे हैं। मैं किसी को निमित्त बना रहा हूँ यह सब बाह्य में है। अंतरंग कारण तो स्वयं का भाव/परिणाम कर्म है। निमित्त पर कब तक दृष्टि डालते रहोगे। संसार में हजारों निमित्त हैं। किस-किस पर हम अपने परिणामों को बिगाड़ते रहेंगे और कर्म का आस्रव करते

रहेंगे। हम सभी घर छोड़कर यहाँ आये हैं। मोक्षमार्ग पर चल रहे हैं। अपना लक्ष्य क्या है? यह हमेशा ध्यान में रखो यदि लक्ष्य भूलकर यहाँ-वहाँ दृष्टि चली गयी तो संसार का अंत नहीं होगा। यह सब क्रियायें मात्र बाह्य क्रिया रह जायेगी। इतना सुंदर अध्यात्म सुनने हमें मिला और सुनाने के बाद पूज्य आर्यिकाश्री बोलीं तुम लोग यह मत समझना कि मैं तुम्हें कह रही हूँ। अरे मैं तो स्वयं अपने आपको सम्बोधन कर रहीं हूँ। राग-द्वेष करते रहेंगे अपना कल्याण कैसे होगा। रात सोने में चली जाती है, दिन का अधिकतर समय आहार-निहार में चला जाता है, कुछ समय इधर-उधर की बातों में चला जाता है, इतना कम समय मिलता है उसको भी हम विषय भोग में ही लगा देंगे तो धर्म्यध्यान कब करेंगे? यह समय निकलता जा रहा है वापस नहीं आयेगा। जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है उपयोगी है, समय की कीमत समझकर आत्म-कल्याण के बारे में विचार करना चाहिए। ये पाँचों इन्द्रिय के विषय-भोग आत्मा से सर्वथा अलग हैं। ये हमारे लिए सुखी-दुखी नहीं कर सकते लेकिन मूर्ख आत्मन् इनको अपना समझता है और राग-द्वेष करता रहता है जबकि आत्मा और शरीर, पाँच इन्द्रिय के विषय भोग अलग-अलग हैं, ऐसा हमेशा चिंतन करते रहना चाहिए तभी हमारा मोह कम होगा। इन विषयों को छोड़ने की बात तो बहुत दूर है अभी तो हमारा इनके प्रति राग-द्वेष-मोह भी कम नहीं हुआ। जब यह शरीर एक क्षण भी आत्मा से अलग नहीं रहता है फिर भी मरने पर एक क्षण भी साथ नहीं जाता है, अतः सर्वथा भिन्न ही है। जब शरीर अलग है तो संसार की अन्य वस्तु हमारी कैसे हो सकती है? जो भी पर द्रव्य दिख रहे हैं, विषय

भोग हम देख रहे हैं वो तीन काल में भी हमारे नहीं हो सकते, आत्मा के नहीं हो सकते। इसीलिए तो कहा है कि -

ऐक्य न तन से तो त्रिया,पुत्र,मित्र के साथ।
कैसे संभव चर्म बिन, रोम कूप रह जात।।

जो भी भाई बंधु शिष्य हैं सब अपने व्यवहार से हैं व्यवहार से हमारे ही हैं लेकिन निश्चय से ये कभी हमारे नहीं हो सकते। सदैव यह विचार करो कि सब हमारे हैं लेकिन मैं इनका नहीं हूँ। यदि ऐसा सोचते हैं तो कभी संक्लेश नहीं होता है। जब असातावेदनीय कर्म का उदय आता है, बीमारी हो जाती है और कोई हमें पूछ नहीं रहा है इतनी वेदना में भी ये हमारे पास नहीं आये, हमारी कुछ भी वैयावृत्ति नहीं की, ऐसा विकल्प उत्पन्न हो तो विचार करो कि जब ये शरीर भी अपना नहीं है तो ये साथी, साधर्मी हमारे कैसे हो सकते हैं? स्वयं के लिए निश्चय और दूसरों के लिए व्यवहार रखो तो कभी भी दुखी नहीं होगे और सोचो यह सब कर्म का उदय है, सेवा कर रहे हैं तो भी कर्म का उदय है, नहीं कर रहे हैं तो भी कर्म का उदय है और कर्म के उदय में समता रखना चाहिए तो निश्चित ही लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हो। छोटी-छोटी बातों के निमित्त से हमें गहरे अध्यात्म की खुराक मिल गयी और साथ-साथ हमारा भी मोक्षमार्ग प्रशस्त करती रहती हैं।

इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री की दृष्टि हमेशा-हमेशा अपने लक्ष्य पर रहती है और हमें भी अपने लक्ष्य के प्रति सजग करती रहती हैं। सदैव लक्ष्य की ओर दृष्टि रखने वाली वात्सल्यमयी माँ के पद-पंकज में सहस्रों नमन.....।

❑❑❑

21. समय को पहिचानो

अप्रैल 2006 में (महाराष्ट्र)सांगली में पहुँचे, वहाँ ब्रह्मचारियों का भवन (रहने का स्थान) बना हुआ है उसमें एक चैत्यालय बना है, 8-10 ब्रह्मचारी बंधु रहकर साधना करते हैं, अध्ययन करते हैं। वहीं पर पूज्य आर्यिकाश्री का दो दिन का प्रवास रहा। दोपहर में मरणकण्डिका का स्वाध्याय चल रहा था, उसमें ब्रह्मचारी भाई भी आकर बैठ गये। प्रकरण वैराग्य का चल रहा था, एक ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया-वैराग्य किसे कहते हैं?

आर्यिकाश्री ने कहा-आप लोगों ने स्वाध्याय किया है आप ही बताओ कि वैराग्य क्या है ?

ब्रह्मचारीजी-पूज्य माताजी मेरे विचार से अनंतानुबंधी कषाय का नहीं होना वैराग्य है ।

पूज्य आर्यिकाश्री- संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति ही वैराग्य है और कषायों की मंदता होना ही वैराग्य है। जब कषायें मंद होती हैं तभी वैराग्य होता है। पञ्चेन्द्रिय के विषय भोगों में प्रवृत्ति विषयों में आसक्ति का परिणाम होना ही कषाय है इनसे विरक्ति होना वैराग्य है।

ब्रह्मचारीजी- टमाटर भक्ष्य है या अभक्ष्य ? खाना चाहिए या नहीं खाना चाहिए ?

पूज्य आर्यिकाश्री-मैं न तो खाने के लिए कहती हूँ ना छोड़ने के लिए कहती हूँ। अभक्ष्य तो मैं नहीं कह सकती क्योंकि साधु वर्ग खाता है लेकिन हाँ जिसको टमाटर के बिना स्वास्थ्य में

कोई परेशानी नहीं है तो नहीं खाना चाहिए। हमारे आचार्यकल्प विवेकसागरजी महाराज टमाटर को विदेशी बैगन कहते थे। यदि आवश्यक नहीं है तो मात्र जिव्हा की पुष्टि के लिए तो नहीं खाना चाहिए।

ब्रह्मचारीजी- पूज्य आर्यिकाश्री स्त्रियों को अभिषेक करना चाहिए या नहीं क्योंकि शास्त्रों में इसका निषेध नहीं आया है, न ही पंचामृत का निषेध आया है। वर्तमान में कुछ आचार्य निषेध करते हैं, कुछ निषेध नहीं करते हैं। इस संबंध में आपकी क्या धारणा है ?

पूज्य आर्यिकाश्री- क्या सही है, क्या गलत है, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते हैं। जैसे-महावीर भगवान् की आयु कहते हैं कि 72 वर्ष है लेकिन जन्म से लगाते हैं तो निर्वाण तक 72 वर्ष आयु नहीं बन पाती है। यदि निश्चित 72 की माने तो जन्म कल्याणक के दिन ही मोक्ष होना चाहिए लेकिन ऐसा है नहीं या तो 72 वर्ष से अधिक होगी या कम होगी। इसी प्रकार मूलाचार में आचार्य वट्टकेर स्वामी ने देवियों की आयु के संदर्भ में दो मतों का संग्रह किया है। अब सही कौन सी है हमें तो मिथ्यात्व के भय से दोनों मतों का ग्रहण करना उचित है। जब तक कि केवली, श्रुतकेवली न मिल जाएँ। एक ही देवी की दो आयु कैसे हो सकती हैं ? इस संदर्भ में धवला में वीरसेन स्वामी ने कहा है कि गुणभद्र एलाचार्य के शिष्य मुझे अपनी जिह्वा नहीं चलानी चाहिए, हमें तो दोनों मतों का संग्रह करके चलना चाहिए, जब केवलज्ञानी मिलेंगे तभी हम निर्णय कर सकते हैं कि सही क्या है, गलत क्या है। अभी वर्तमान में हमारे गुरु की जो परम्परा है उसको सही मानकर उसी का पालन

करना चाहिए। कोई पूछे तो कह दो कि हमारे गुरु की यही आज्ञा है। उसी का हम पालन करते हैं आगे हमें कुछ नहीं मालूम है और न ही हमें निर्णय करने का अधिकार है।

पूज्य आर्यिकाश्री ने आगम को सामने रखकर प्रश्नों का समाधान किया और शिक्षा दी कि हम सबको इन सब बातों में नहीं पड़ना चाहिए हमें तो अपने परिणामों को निर्मल बनाना चाहिए। इतना कम समय मिला है अपने कल्याण के बारे में सोचो यहाँ-वहाँ अपना दिमाग खर्च मत करो।

ब्रह्मचारीजी-(विनय से और प्रश्न पूछने की अनुमति लेकर) सम्यग्दर्शन क्या है ?

पूज्य आर्यिकाश्री-सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धा रखना। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ मोह नहीं होता है। मोह और श्रद्धा में बहुत अंतर है। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ गुरु के प्रति अनादर का भाव नहीं आता है, चाहे गुरु देखें न देखें, बोलें न बोलें, गुरु के प्रति बुरे भाव नहीं करना। हमें तो अपनी श्रद्धा का फल मिलता है। हमारे ही तीव्र अशुभ कर्म का उदय है तभी तो गुरु के भाव मुझसे/हमारे से बोलने के नहीं हो रहे हैं, हम अपनी श्रद्धा/आस्था मजबूत रखेंगे। पहले पाप किया था, गुरु का तिरस्कार किया था उसी का तो फल है कि अभी नहीं बोल रहे हैं। अभी भी हम श्रद्धा ढीली कर देंगे, गुरु के प्रति खोटे परिणाम कर लेंगे तो पुनः गुरु नहीं मिलेंगे, अभी तो दर्शन मिल रहे हैं। जहाँ मोह होता है वहाँ गुरु के न बोलने पर मन में आर्त-रौद्र परिणाम होते हैं, संक्लेश होता है और श्रद्धा, राग-द्वेष परिणाम नहीं करने देती है। ये विश्वास रखना चाहिए कि गुरु कभी

शिष्य के अहित में नहीं सोचते। कुछ भी हो कितनी भी विषम परिस्थिति हो हमारी श्रद्धा में कमी नहीं आना ही सम्यग्दर्शन की भूमिका है। सम्यग्दर्शन प्राप्ति की तरफ झुकाव है। मोटे तौर पर कह दें तो यही सम्यग्दर्शन है।

दो दिन के प्रवास के बाद वहाँ से विहार किया, विहार में ब्रह्मचारी भाई भी साथ चल रहे थे। एक भाई ने चलते-चलते ही रास्ते में थूक दिया तो आदरणीय आदित्यमति माताजी ने कहा कि भईया आपने चलते-चलते ही थूक दिया नीचे कोई जीव होगा तो मर जायेगा। सुनकर ब्रह्मचारीजी ने पूज्य आर्यिकाश्री से पूछा कि माताजी इसमें भी हिंसा होती है क्या?

पूज्य आर्यिकाश्री- हाँ भईया! प्रमाद वृत्ति है तो हिंसा होगी ही होगी। जब मैं चौथी कक्षा में पढ़ती थी तब नैतिक शिक्षा की कक्षा में यही तो सिखाया जाता था कि थूककर या नाक साफ करके उसे ढक देना चाहिए जिससे उसके रोगाणु चारों तरफ न फैल पायें और यदि हमें कोई बीमारी है तो वह किसी को न लग जाये। जब बड़े हो गये धर्म समझने लगे कि खड़े-खड़े, चलते-चलते थूकने से हिंसा होती है। हमने उसे ढका नहीं तो किसी को देखकर ग्लानि भी आ सकती है और यह सभ्यता भी नहीं है। हमें इन सब बिंदुओं के साथ मूल बिंदु अहिंसा को ध्यान में रखना चाहिए।

इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री ने ब्रह्मचारी भाईयों को अनेकांत धर्म समझाकर उसी मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा दी।

❑❑❑

22. निवृत्ति ही साधना का सोपान

तमिलनाडु की यात्रा के अंतिम पड़ाव सेलम नगर की बात है। एक श्रेष्ठी के गृह चैत्यालय के दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में तमिल निवासी ब्रह्मचारिणी ने पूज्य आर्यिकाश्री से एक प्रश्न पूछा - आचार्यश्री जन सम्पर्क के लिए क्यों मना करते हैं ?

पूज्य आर्यिकाश्री- बहिन! छद्मस्थावस्था में जितना जन सम्पर्क बढ़ता है उतनी साधना में कमी आती है क्योंकि यह मोह है और मोह 10वें गुणस्थान तक है और छद्मस्थ अवस्था 12वें गुणस्थान तक है, इसीलिए तीर्थंकर भगवान् छद्मस्थावस्था में बोलते तक नहीं है। केवलज्ञान होने के बाद ही देशना होती है। अपन लोगों को कुछ भी ज्ञान नहीं है तब भी बुद्धि पूर्वक बोलते हैं, बोलने के भाव होते हैं और भगवान् के तीन लोक तीन काल की सम्पूर्ण द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायों को जानते हुये भी बोलने के भाव नहीं होते हैं और हम कुछ न जानते हुए भी इतना जनसम्पर्क बढ़ा लेते हैं। आचार्यश्री हमेशा कहते हैं कि जन सम्पर्क करोगे या होगा तो साधना को समय नहीं मिलेगा, क्योंकि स्नेह भी प्रमाद है और प्रमाद से अपने नियमों में, व्रतों में दोष लग जाते हैं। इसीलिए अभी हमें जितना हो सके उतना कम बोलना चाहिए ताकि हमारी प्रवृत्ति कम हो निवृत्ति की तरफ ध्यान रहे और साधना भी बढ़ती रहे। यदि निर्विकल्प साधना करना है आत्मकल्याण की भावना है तो जनसम्पर्क से कोशों दूर

रहना चाहिए। इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री ने उस बहिन को समझाया। मुझे उस समय की बातें याद आ गयी जब पूज्य आर्यिका विशालमती माताजी थी तब आप (पूज्य आर्यिका विज्ञानमतीजी) बिल्कुल नहीं बोलते थे, सतत् स्वाध्याय साधना में ही रत रहते थे, तभी तो 20 दिन में चार-पाँच बड़े-बड़े स्वाध्याय भी कर लिया करती थीं और उसी से अपनी साधना में चर्या में निखार लाती थीं। आज भी उनका मन बोलना नहीं चाहता है लेकिन बड़े होने के नाते संघनायिका होने के कारण बोलना पड़ता है। (उनकी भावना तो बाहुबली जैसे बनने की है) पुराने लोग जब आज इनको बोलते देखते हैं तो पूछ ही लेते हैं कि माताजी आप तो पहले बिल्कुल नहीं बोलते थे अब कैसे बोलने लगे तो पूज्य आर्यिकाश्री कहती हैं बड़ों के सामने नहीं बोलने पर ही कल्याण संभव है और बड़ों के न होने पर बोलने पर ही समाज में रहकर साधना कर पाना संभव है। सच भी है, इसे ही तो आचार्यों ने विनय कहा है। हमारी गुरु माँ की समाज में, संघ में रहकर भी भावना तो बाहुबली जैसे बनने की है तभी उन्होंने बाहुबली भगवान् की स्तुति में लिखा है-

ना बोलूँ ना देखूँ आँखें खोल किसी को नाथ।
जीवन अर्पित करके मैं तो रहूँ तुम्हारे साथ।।

हर समय, हर क्षण अपने में ही लीन रहने की भावना रखने वाली और उस भावना को अपनी प्रत्येक क्रिया से साधने में संलीन रत्नत्रय प्रदात्री गुरु माँ को उनके जैसी बनने की भावना से कोटिशः वंदन...वंदन...वंदन....।

❑❑❑

23. आकृति बदली तो कर्म बदले

एक बार एक पत्रकारजी ने पूज्य आर्यिकाश्री की दो तीन फोटो निकाल ली और निकालने लगे तो पूज्य माताजी ने कहा इन फोटो से क्या होगा? वो बोले माताजी हम इन्हें अपने पास रखेंगे। सुनकर पूज्य आर्यिकाश्री ने कहा इन फोटो में क्या उलझते हो अपनी फोटो का ख्याल रखो कहीं हमारा अपना (आत्मा) फोटो न बिगड़ जाये। यदि आत्मा का फोटो बिगड़ गया तो पूरा जीवन खराब हो जायेगा। अरे जीवन ही नहीं वरन् संसार ही बढ़ता जायेगा। जब कषायें आती हैं तो हमारे चेहरे की आकृति बदल जाती है और चेहरे की आकृति बदली तो कर्म भी बदले और कर्म बदले तो आत्मा की फोटो भी विकृत हो जायेगी।

❑❑❑

24. कलश करो या न करो, क्लेश मत करो

दीपावली के आसपास एक दिन आहारोपरांत एक श्रावक ने पूज्य आर्यिकाश्री से कहा कि पूज्य माताजी ये हमारे बच्चे पटाखे चलाने का त्याग कर रहे हैं इनके साथ मैं भी त्याग कर रहा हूँ।

पूज्य आर्यिकाश्री- नहीं तुम नियम मत लेना तुम नियम तोड़ देते हो।

श्रावक- नहीं माताजी! मैंने भगवान् के चरण छूकर दर्शन करने का नियम लिया था, मैं रोज शुद्ध पंचे (धोती-दुपट्टे) पहनकर भगवान् के चरण छूता हूँ। हाँ, लेकिन कलश नहीं करता हूँ।

पूज्य आर्यिकाश्री- कलश नहीं करते तो कोई बात नहीं लेकिन क्लेश मत करना। क्लेश करने से कलश करने के आनंद की अनुभूति नहीं हो पाती है और आत्मा के परिणामों में भी निर्मलता नहीं आती है। इस प्रकार पूज्य आर्यिकाश्री की दृष्टि हमेशा-हमेशा कषायों से दूर रहने व दूसरों को भी कषाय न हो, ऐसी भावना रहती है। वास्तव में सही धर्म भी यही है। यही मोक्षमार्ग है।

❑❑❑

25. अनूठी मनौती

औरंगाबाद प्रवास के दौरान पू. आर्यिकाश्री अतिशय क्षेत्र कचनेर के दर्शन करने गयी- भगवान् के प्रति भक्ति देखिये, पहले दिन का उपवास था। दो दिन मात्र मूंगफली और पानी लिया, चौथे दिन फिर अष्टमी पर्व का दिन होने से उपवास कर लिया और उसी परिस्थिति में कचनेर की तरफ बिहार कर दिया। 35 किलोमीटर चलकर पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन किये। जब दर्शन कर रही थी, उस समय एक बहिन ने कहा- पू. माताजी यहाँ पर सभी श्रद्धालु अपनी-अपनी मनौती करते हैं और सुना है पूरी भी होती है। पू. आर्यिकाश्री, तुम लोग भी कर लो मनौती.....।

ब्र. बहिन- आप भी करोगे कुछ मनौती.....।

सुनकर पू. माताजी मौन हो गयीं। बात भी वहीं रह गयी। जब वापिस औरंगाबाद आयीं तो मैंने कहा माता जी, आपने भी भगवान् के पास कुछ मांगा है क्या? पू. आर्यिकाश्री- हाँ, लेकिन तुम्हें क्यों बताऊँ ?

बार-बार हम सभी जोर देकर पूछा तो पहले आनाकानी करते रहे फिर कहने लगीं, मैं बताऊंगी तो तुम लोग हँसोगे। पुनः सभी ने प्रार्थना की आप बताइये तो सही आपने क्या मनौती की है?

पू. आर्यिकाश्री- मैंने भगवान् से कहा- हे भगवन्! संसार में जितने रत्नत्रयधारी हैं वे सभी रत्नत्रय की पूर्णता को प्राप्त हो जायें

और जिनकी भावना रत्नत्रय धारण करने की है, उन्हें रत्नत्रय निधि मिल जाये और जितने भी प्राणी हैं उन सभी के भाव रत्नत्रय धारण करने के बन जायें, ऐसी मेरी भावना है। सभी जीव सुख शांति से मनुष्य पर्याय को सार्थक करें।

पू. आर्यिकाश्री की भावना सुनकर हम सभी को आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी हुयी कि धन्य हैं आपके निर्मल परिणाम और सर्व प्राणियों के कल्याण की भावना और आपकी यही भावना आपके अपने रत्नत्रय की पूर्णता में साधक बनेगी। भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि हे त्रिलोकीनाथ! हमारी रत्नत्रय प्रदात्री गुरु माँ की **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की भावना शीघ्रतातिशीघ्र पूर्ण हो और हम भी उनके जैसे अपने परिणामों को विशुद्ध बनायें इसी भावना के साथ पू. आर्यिकाश्री के चरणों में नंत नंतशः वंदन.....।

❑❑❑

26. तप-त्याग के प्रति बहुमान

सिरजगांव (कर्नाटक) से बिहार करते समय रास्ते में एक किसान के बगीचे में आहार हुआ। उस दिन पू. आर्यिकाश्री ने आहार पूरा नहीं किया, उनको बहुत घबराहट हो रही थी। हम सभी ने कहा कि एक-एक मुनक्का खाते जाते और पानी तो पूरा पी लेते, पानी की कमी से ही आपका स्वास्थ्य खराब होता है।

पू. आर्यिकाश्री- (वैराग्य से ओतप्रोत होकर) अच्छा हुआ इसी बहाने से आधा भोजन छूट गया, रोज-रोज तो खाते हैं कम से कम स्वास्थ्य की वजह से छोड़ने को मिला नहीं तो तुम लोग खाने-खाने की बात करते हो, ये खा लो, वो खा लो। आज घबराहट भी हो रही है और छोड़ने को भी मिल रहा था इसीलिये जल्दी से हाथ छोड़ दिया। देखकर सुनकर ऐसा लगा कि लोक में कहा जाता है कि जिसको मिलता है वो उसको छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन यहाँ तो माँ श्री के साथ पूरा विपरीत ही देखने को मिलता है। इतनी अनुकूलता में या पुण्य के उदय में सब कुछ है और सब मिल रहा है, फिर भी उनको छोड़ने के बहाने ही ढूंढती रहती हैं, यही साधक की साधना, त्याग, तपस्या के प्रति बहुमान उत्कृष्ट चारित्र को धारण करने की प्रक्रिया है, जो हम लोगों को गुरु माँ में सतत् दृष्टिगोचर होती रहती है।

❑❑❑

27. आत्मिक दृष्टि

मालथौन वर्षायोग समापन के पश्चात् सोनागिरि सिद्धक्षेत्र की यात्रा के लिए बिहार करते-करते एक कृषक के घर में विश्राम हेतु ठहरे उसका पूरा मकान लकड़ी का ही बना था, दीवालें भी कुछ विशेष ढंग से ही बनी थीं। उसको देखकर हम सभी ने विस्मय से कहा कि देखो ये मकान कैसा बना है ये लोग कैसे रहते होंगे ?

पू. आर्यिकाश्री- अरे तुम लोग भी कहाँ दृष्टि रखते हो? विचार तो करो अपन भी यह लकड़ी कितनी बार बन चुके हैं, अपने ही आंगोपांगो से ये दीवालें बनी हैं, अनादिकाल से यही तो करते आ रहे हैं, इसमें भी तुम लोगों को आश्चर्य हो रहा है, बड़े खेद की बात है।

इस प्रकार पू. आर्यिका श्री अचेतन से दृष्टि हटाकर चेतन की ओर ही जाने को प्रेरित करती रहती हैं और स्वयं प्रतिक्षण अध्यात्म का ही रसपान करती रहती हैं। धन्य हैं हम सभी जो ऐसी आध्यात्मिक गुरु माँ के चरणों में रहकर मोक्षमार्ग में चलने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी पूज्या माँ श्री के चरणों में वंदामि.....।

❑❑❑

28. साधना का फल

स्वाध्याय चल रहा था, ग्रन्थ था ध्यानसूत्राणि। अध्यात्म का प्रकरण था, उसी में किसी ने प्रश्न किया कि साधना क्या होती है? साधु को कैसी साधना करना चाहिए?

पू. आर्यिकाश्री- प्रतिकूलता में समता परिणाम रखना ही सबसे बड़ी साधना है। साधु को तो हर समय साधना करनी चाहिए। साधु दिन भर जो साधना करता है, उसका फल सामायिक में अनुभव होता है। पहले-पहले यदि सामायिक में शेर आ जाये तो उसे हटाने का भाव आता है, किंतु वह सतत् साधना करता जाता है तो वो समय भी आ जाता है जब सामायिक में शेर आकर खाने लगता है, तब हटाने का भाव हुआ, बाद में जब साधना और वृद्धिंगत हो जाती है, तो शेर खा भी ले, फिर भी ध्यान नहीं टूटता है। वास्तव में साधना का यही फल है। कितनी भी कैसी भी प्रतिकूलता आ जाये तो भी साधना से च्युत न हो। अनुकूलता में समता रखना कोई बड़ी बात नहीं है, प्रतिकूलताओं में समता परिणाम रखना ही सच्ची साधना है। प्रश्न- थोड़ा बहुत संक्लेश तो होता होगा?

पू. आर्यिकाश्री- प्रथम अवस्था में तो होता है, लेकिन धीरे-धीरे अभ्यास करने से संक्लेश परिणाम नहीं होते हैं।

बहिन- पू. आर्यिका श्री कोई उदाहरण देकर समझाइये

ताकि हमें जल्दी समझ में आ जाये।

पू. आर्यिकाश्री- तुमने कभी फ्रिज देखा? हमारी साधना फ्रिज के समान होना चाहिए। जिस प्रकार बाहर कितनी भी गर्मी हो फ्रिज में रखी वस्तु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, उसके अंदर ठण्डक ही रहती है। उसी प्रकार साधु बाहर कितना भी उपसर्ग सह रहा हो, सर्दी-गर्मी हो प्रतिकूलतायें हों, फिर भी अंदर के परिणाम निर्मल ही बने रहें, निज में लीन रहने का पुरुषार्थ करता रहता है, तभी सच्ची साधना है। और फ्रिज में रखी वस्तु जैसे भी साधना कभी नहीं करता। जिस प्रकार फ्रिज में रखी वस्तु अंदर के अनुकूल वातावरण में तो सुरक्षित, सुव्यवस्थित बनी रहती है बाहर आते ही प्रतिकूलता में सड़ जाती है या सड़ने लगती है। हमारे परिणाम भी अनुकूलता में ही विशुद्धि की ओर रहें और प्रतिकूलता आते ही संक्लेशित हो जायें, ऐसा नहीं होना चाहिए।

पू. आर्यिकाश्री ने साधना की परिभाषा एवं परिचित उदाहरणों से हम सभी को सहजता से समझा दिया और मैंने सोचा कि हम सभी ने यह शाब्दिक रूप से आज सुना है, तथापि गुरु माँ के आचरण में तो हम हर समय देखते हैं, किंतु समझ नहीं पाये थे।

धन्य है पूज्या गुरु माँ! जो आचरण में आचरित करके ही कथनी से कथन करती हैं। ऐसी माँ के चरणारविंद में सच्ची साधना की प्राप्ति हेतु वंदामि.....।

❑❑❑

29. पैर नहीं, कषायों को दबाओ

बिहार करके एक जगह रात्रि विश्राम हेतु रुके, पू. आर्यिकाश्री के पैर बहुत दुख रहे थे। बैठते समय वो पैर फैलाकर बैठ गयीं तो आदरणीय वृषभमती जी ने कहा- पू. माताजी आज आपके पैर दुख रहे हैं, मैं आपके पैर दबा दूँ ?

पू. आर्यिकाश्री- नहीं माताजी, पैर नहीं दबाओ। मुझे मात्र अपनी कषायों को दबाना सिखा दो तो पैर अपने आप ही दुखना बंद हो जायेंगे।

धन्य है पू. गुरु माँ जो हर समय अपने विभाव परिणाम राग-द्वेष- मोह को ही नाश करने का पुरुषार्थ करती रहती हैं और यही शिक्षा हम सभी को अपनी चर्या से और चर्चा से देती हैं, उन जैसा बनने को ही तीनों संध्यायों में तीनों योगों से वंदामि.....।

❑❑❑

30. जो आया है वो जायेगा

केन्द्र प्रशासित शहर पाण्डिचेरी वर्षायोग समापन के पश्चात् तमिलनाडु के जिनालयों की यात्रा हेतु प्रस्थान किया। पाण्डिचेरी से लगभग 80 कि. मी. दूर वंदवासी जिले के पास त्रिदशेन्द्राचार्य त्रिलोक पूज्य युग प्रवर्तक आदिनाथ भगवान की भूगर्भ से प्राप्त मनोहारी प्रतिमा जहाँ विराजमान है, सलुकई अतिशय क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ पहुँचे दर्शन किये, रात्रि विश्राम भी किया। संसार में जिसे अदृश्य कहा जाता है वह किसी को भी नहीं छोड़ता है, चाहे पूज्य पुरुष हो या सामान्य.....।

पू. आर्यिकाश्री को भी असातावेदनीय ने इस रात अपना बहुत रंग दिखाया। पेट में तकलीफ हो रही थी, सभी को समझ में आ रहा था, लेकिन हम सभी कुछ कर नहीं पा रहे थे, क्योंकि पू. आर्यिकाश्री का रात में 10 बजे के बाद कुछ भी वैयावृत्ति नहीं करवाती हैं, यह नियम है अब नियम कैसे तोड़ सकती हैं और हम तुड़वा भी नहीं सकते, क्योंकि गुरुमुख से सुना था कि नियम तोड़ने से तुड़वाने से मंदिर तोड़ने के बराबर पाप लगता है, हम सभी संघस्थ भगवान् का ही नाम जपते रहे। पू. माताजी तो ऐसे साम्य भाव से आत्मस्थ होकर लेटी थी कि किसी को अनुभूति भी नहीं हो कि उन्हें वेदना हो रही है, प्रातःकाल हुई, पू. आर्यिकाश्री अपने आवश्यक करके उठीं, तो सभी ने विनय भाव से पूछा कि- आपको रात्रि में क्या हो रहा था,पेट में तकलीफ थी क्या?

पू. आर्यिकाश्री- कुछ नहीं, अंतरंग कारण असातावेदनीय कर्म का उदय था ही, बाहर में पुद्गल का पुद्गल में परिणमन हो रहा था,

शरीर भी पुद्गल और उसके अंदर वाला भी पुद्गल ही है रस गुण की पर्याय का मीठा, खट्टा रूप परिणमन हो रहा था, स्पर्श गुण की शीत-उष्ण रूप पर्याय हो रही थी और आत्मा के प्रदेश जो सामान्य स्थिति में थे, वे फैल गये थे बस और कुछ नहीं हो रहा था।

ब्र. बहिन- आप कितनी प्रसन्नता से समता भाव से बता रही हैं और हम लोगों को तो न जाने कैसा लग रहा था, न नींद आ रही थी, न कुछ कर पा रहे थे, मात्र णमोकार मंत्र पढ़ रहे थे उसमें भी मन नहीं लग रहा था।

पू. आर्यिकाश्री- इसमें मन न लगने की क्या बात है? कर्म का उदय तो संसारी प्राणी के साथ हर समय लगा ही रहता है। कभी शुभ कर्म, कभी अशुभ कर्म। शुभ कर्म के उदय में हम राग कर लेते हैं और अशुभ कर्म के उदय में द्वेष कर लेते हैं, लेकिन वास्तव में मोक्षमार्गी को राग-द्वेष नहीं करना चाहिए, ताकि नवीन कर्म बंध नहीं हो और पुरातन कर्म की भी निर्जरा हो तभी हम अपने गंतव्य को प्राप्त कर सकते हैं और फिर इसी समय हमें महापुरुषों (जैसे सनतकुमार मुनि, समन्तभद्र मुनि आदि) को याद करके भी सहनशक्ति बढ़ाना चाहिये और फिर जो आया है वह जायेगा यह याद रखो तो परिणामों में संक्लेशता नहीं आ पाती है।

सभी संघस्थ पू. आर्यिकाश्री के प्रसन्न मुख को निहारते रहे और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि सच में हम सभी ने पूर्व में कुछ अच्छा तो किया है, तभी प्रतिकूलताओं में कमलवत् निर्लिप्त साम्य परिणामों से मुस्कुराती रहती है और मुस्कुराते रहो यह सिखाने वाली माँ की शरण हमें मिली है, वीतरागी भगवान् से यही प्रार्थना है कि जब तक संसारार्णव से पार न हो जायें, तब तक आपके जैसी माँ की गोद ही में संस्कार मिलें, उसी भावना की पूर्ति हेतु हर श्वांस का वंदन-वंदन-वंदन.....।

❑❑❑

31. मूल्यवान क्या ? ज्ञान या आचरण

कोपरगाँव के स्वाध्याय प्रेमी श्रावक पू. आर्यिकाश्री के पास ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से आये और ज्ञान की बातें करते रहे- अमुक ग्रंथ में ऐसा लिखा है तो अमुक ग्रंथ में कुछ अलग, यह बात समझ में नहीं आती है और भी ज्ञान की बातें पूछते रहे।

पू. आर्यिकाश्री ने उनकी सभी शंकाओं का समाधान आगम व युक्तियों के माध्यम से किया। फिर चर्चा-चर्चा में ही उनसे पूछ लिया कि मात्र पढ़ते ही हो या आचरण में भी लाते हो? सभी श्रावकों ने उस समय तो कह दिया कि आचरित भी करते हैं। दूसरे दिन एक स्वाध्यायशील श्राविका के घर पर पू. आर्यिकाश्री का पड़गाहन हो गया। गृह प्रवेश करते ही उनके यहाँ एक पानी की टंकी भरी हुई खुली रखी थी। उसे देखकर माताजी को कुछ विकल्प हुआ और आहारोपरांत उनसे कहा कि- तुम लोग कह रहे थे आचरित करते हैं, तुम्हारे ही घर पर इतनी भारी हिंसा का साधन बना रखा था। विचार करो पानी से भरे बर्तन खुले रखना मतलब शिकार व्यसन का पाप लग रहा है। संज्ञी पंचेन्द्रिय की हिंसा का पाप तुम्हें लगेगा। वो मरे या न मरे, प्रमाद वृत्ति है और तुम लोग तो ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें करते हो। अरे ! 11 अंग और 14 पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया तो भी कोई बड़ी बात नहीं है, चारित्र के बिना ज्ञान गदहे की पीठ पर लदी हुई शक्कर की बोरी के समान है। ज्ञान आ गया लेकिन मूलधर्म अहिंसा नहीं आया, विवेक नहीं आया तो उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। तुम

लोग बातें तो इतनी बड़ी-बड़ी करते हो और आचरण में शून्य हो। ज्ञान प्राप्ति के साथ चारित्र की तरफ बढ़ना ही ज्ञान का सही फल है। आचरण में ज्ञान का फल नहीं आया तो कल्याण नहीं होगा। याद रखो केवलज्ञान यथाख्यात चारित्र के होने पर ही होता है, चारित्र से ही आत्मकल्याण होता है। स्वाध्याय का फल कषायों की मंदता होना और कषायों का मंद होना मतलब चारित्र की तरफ कदम बढ़ना। पुस्तकीय ज्ञान सभी को हो जाता है लेकिन आचरण में ज्ञान आये, ऐसा विरलों को ही होता है। अकेला ज्ञान मोक्षमार्ग नहीं है बल्कि श्रद्धा-ज्ञान- चारित्र तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। श्रद्धा के साथ जो समीचीन ज्ञान है वह आचरण में आ जाये यही धर्म है। कितना भी स्वाध्याय करो यदि अहिंसा धर्म का पालन नहीं किया तो संसार समाप्त तो क्या सीमित भी नहीं होगा।

सभी स्वाध्याय प्रेमियों ने जब यह बातें सुनी तो बोले आज तक हमें पण्डितजी ने ज्ञान की महत्ता तो समझाई परन्तु चारित्र की महत्ता नहीं बताई। अब हमें आपने जो बताया है उसके आधार से स्वाध्याय करके आचरित करने का पुरुषार्थ करेंगे।

धन्य हैं पूज्य आर्यिकाश्री जो सदैव पठन-पाठन करते, करवाते हुए भी मुख्यता उस अध्ययन को क्रियान्वित करने के लिए ही देती हैं और उसी आचरण के मार्ग पर निरंतर बढ़ती जा रहीं हैं। चर्या से आचरण का ज्ञान कराने वाली पूज्य आर्यिकाश्री को इसी भावना के साथ नमन.....।

उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।

वंदामि.....।

❑❑❑

आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी द्वारा रचित साहित्य

1. शीलमञ्जूषा
2. तत्त्वार्थ मञ्जूषा भाग-1
3. तत्त्वार्थ मञ्जूषा भाग-2
4. संस्कार-मञ्जूषा भाग-1
5. संस्कार-मञ्जूषा भाग-2
6. भक्तिपुंज मंजूषा
7. प्रवचन मंजूषा भाग-1
8. प्रवचन मंजूषा भाग-2
9. बालसंस्कार मंजूषा भाग-1
10. बालसंस्कार मंजूषा भाग-2
11. विवेक मंजूषा
12. भोगोपभोगपरिमाणविधि
13. दोहा शतक
14. गुरुस्तुति
15. पलायन क्यों ?
16. भूषणद्वय महाकाव्य
17. सच्चे देव का स्वरूप
18. अच्छी सास
19. बहू कैसी?
20. अनर्थदण्ड क्या?
21. तत्त्वार्थसूत्र विधान
22. चौंसठ ऋद्धि विधान
23. सम्मेद शिखर विधान
24. कल्पद्रुम मण्डल विधान
25. बड़ेबाबा विधान
26. उपसर्गहर रक्षाबंधन विधान
27. सच्चे देव का स्वरूप।